साहित्य परिषद् ग्रन्थमाला सं. २, १

* ओ३म् *

प्राचीन भारत में स्वराज्य

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥

"त्वां विशो वृणुतां राज्याय"

लेखक
श्री० पं० धर्मदत्त जी विद्यालंकार, सिद्धान्तालंकार

सम्पादक—श्री० पं० शशिभूषण जी विद्यालंकार

गुरुकुलीय साहित्य परिषद्
गुरुकुल कांगड़ी

प्रथमवार | सम्वत् १९७६ विक्रमी
ईसवी सन् १९२०
दयानन्दाब्द ३७ | मूल्य १॥)

नन्दलाल के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय काङ्गड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

समर्पण

जिनका तन मन धन धान्य सभी,
नित भारत के हित अर्पित है।
उनके यह श्री चरणाम्बुज में,
अति तुच्छ सी भेंट समर्पित है॥

लेखक

निवेदन

गुरुकुलीय साहित्य परिषद् ने अपने उद्देश्यानुसार साहित्य की विशेष तौर पर सेवा करने के लिये एक ग्रन्थ-माला निकालने का निश्चय किया था। ग्रन्थमाला की प्रथम पुस्तक "सन्त जीवनी" हिन्दी साहित्य-संसार के सन्मुख उपस्थित की जाचुकी है। आज हम उसकी दूसरी तीसरी संख्या "प्राचीन भारत में स्वराज्य" नाम को लेकर उपस्थित हुवे हैं। पुस्तक की उपयोगिता पुस्तक के नाम से स्पष्ट है। निस्सन्देह यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी साहित्य में प्रथम पुस्तक है। भारत के प्राचीन गौरव को दिखाने की जितनी आवश्यकता है वह प्रत्येक भारत हितचिन्तक भली प्रकार समझता है। हमें निश्चय है कि श्री पं० धर्मदत्त जी अवश्य ही भारत का प्राचीन गौरव दिखाने में सफल यत्न हुवे हैं। आपने प्राचीन भारत की शासन प्रणाली का यथा सम्भव पर्याप्त दिग्दर्शन कराया है। आपने दिखाया है कि प्राचीन भारत में राजसत्ता प्रजासत्ता के आधीन थी प्रतिनिधिसत्ताक एवं परिमित-राजसत्ताक शासन पद्धति थी।

लेखक महोदय को उक्त ग्रन्थ लेखन के लिये धन्यवाद देते हुये पुस्तक-प्रकाशन में विलम्ब के लिए क्षमा भी चाहते हैं। यह ग्रन्थ लगभग दो वर्ष पूर्व का लिखा हुआ है। निश्चय ही लेखक महोदय का सामयिक निर्देश समयानुसार न रहा होगा उसका पाठक महोदय अवश्य ही ध्यान रक्खें।

निस्सन्देह छपाई की शीघ्रता आदि के कारण अनेक स्खलन अनेक स्थलों में होंगे अग्रिम बार में उनके दूर करने का निश्चय दिलाते हैं। विषय की नवीनता के कारण अनेक आङ्गलभाषा के शब्दों के स्थान में हिन्दी के शब्द पाठकों को विचित्र मालूम होंगे अतः लेखक महोदय ने दोनों भाषाओं के शब्द यथा सम्भव दिये हैं और हिन्दी के प्रसिद्ध शब्दों के ही प्रयोग का यत्न किया है। आशा है नवीन शब्द पाठकों को न अखरेंगे।

ग्रन्थमाला के सम्पादक को हैसियत से श्री पं० यज्ञदत्त जी विद्यालङ्कार और श्री पं शशिभूषण जी विद्यालंकार ने हस्तलिखित ग्रन्थ देखने और सुधारने में जो यत्न किया है तदर्थ हम आप दोनों सज्जनों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते।

प्रूफादि देखने में ब्र० शान्तिस्वरूप जी मेहता और ब्र० भीमसेन जी, तथा ब्र० सुरेन्द्रनाथ जी ने जो परिश्रम और समय लगाया है उस के लिये भी उक्त ब्रह्मचारियों का अत्यन्त धन्यवाद है।

निश्चय है प्राचीन भारतीय राजनीतिक गौरवान्वेषी लोग प्राचीन भारत के ऐतिहासिक एवं राजनीतिक गौरव को समझते हुए हमारे उत्साह को बढ़ायेंगे और हमें शीघ्र ही इस ग्रन्थ की शुद्ध पुनरावृत्ति एवं अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन का शुभअवसर प्राप्त करायेंगे।

निवेदक—

मन्त्री साहित्य परिषद्

* ओ३म् *

प्रस्तावना ।

कोई भी सभ्य मनुष्य समाज, राजा अथवा किसी अन्य प्रकार की राज संस्था के बिना नहीं रह सकता । शत्रुओं से अपनी जान और माल की रक्षा करने के लिये आवश्यक है कि वह किसी को शक्ति और अधिकार देकर राजा नियत करे जो उसकी शत्रुओं से यथावत् रक्षा कर सके । राजा का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा करना है । परन्तु रक्षक को भक्षक होने में कुछ समय नहीं लगता जो राजा शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करने के लिये नियत किया जाता है वही अपने स्वार्थवश प्रजा की जान, माल, और उस से बढ़ कर उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर अनुचित हस्ताक्षेप करने लगता है । संसार का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि, जहां मनुष्य समाजों को शत्रुओं से अपनी आत्मरक्षा करने के लिये अनेक संग्राम करने पड़े हैं वहां अपने ही राजाओं से अपनी आत्मरक्षा करने के लिये भी अनेक संग्राम और घोर आन्दोलन करने पड़े हैं । इस लिये सभ्य मनुष्य समाज का दूसरा चिन्ह यह है कि वह अपनी रक्षा के लिये न केवल राजा को ही नियत करे, किन्तु साथ ही ऐसी राज संस्था बनाये, जिसके अनुसार राजा जहां एक ओर अधिकार प्राप्त करके प्रजा की पूर्ण तौर से रक्षा और उन्नति कर सके, वहां प्रजा की जान, माल, और वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का अनुचित हस्ताक्षेप न कर सके । प्रजा के स्वार्थों की रक्षा के लिये और राजा को

उच्छृंखलता से बचाने के लिये आवश्यक है कि राजा स्वेच्छा से नहीं किन्तु प्रजा की इच्छानुसार शासन करता हो। जिस मनुष्य समाज में प्रजा सत्ता राज सत्ता के आधीन और दासभूत होकर रहती है वह समाज राज नैतिक दृष्टि से सभ्य कहलाने योग्य नहीं है। सभ्य मनुष्य समाज वही है जहां राज सत्ता को प्रजा सत्ता के आधीन हो कर रहना पड़ता है।

भारत के प्राचीन इतिहास से अनभिज्ञता प्रकट करते हुए अनेक लेखकों ने लिखा है कि प्राचीन भारत वासियों को एक मात्र राज सत्तात्मक शासन पद्धति (Absolute monarchy) का ही ज्ञान था और वे सदा उसी शासन पद्धति से ही शासित होते रहे हैं। यदि यह सत्य हो तो मानना पड़ेगा जिन्हों ने अध्यात्म शास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा आदि नाना विद्याओं के उच्चकोटि के मौलिक आविष्कार किये थे वे राज नैतिक दृष्टि से असभ्य थे। परन्तु ऐसा कहना अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। राजनीति शास्त्र की प्राचीन काल में पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। भारत-वासी एक सत्तात्मक शासन पद्धति के दोषों को पूर्ण तौर से जानते थे। अतएव राजसत्ता को प्रजा सत्ता का अनुगामी बनाने के लिये उन्होंने पर्याप्त प्रबन्ध किये हुए थे।

भारत-वासियों ने क़ानून बनाने का काम (Legislature) राजा के हाथ में नहीं दिया हुआ था। राजा का काम धर्म शास्त्रों तथा प्रजा के विद्वान् और निष्पक्षपात पुरुषों द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार, शासन करना था। उसे उन में परिवर्तन करके का अधिकार नहीं था। शासन भी वह स्वेच्छा से नहीं कर सकता था।

वह विद्वान् मन्त्रियों की ऐसी शक्ति शालिनी सभा से बद्ध था कि जिस के आदेश और सम्मति के बिना केवल निज सम्मति से वह कोई कार्य नहीं कर सकता था। उन मन्त्रियों का चुनाव राजा के हाथ में था किन्तु इस से उन के अधिकार कम नहीं हो जाते थे। वे राजा को दण्ड दे सकते थे, सिंहासन च्युत कर सकते थे राजा भी उन से डरता था। शुक्राचार्य ने कहा है कि जिन मन्त्रियों से राजा नहीं डरता वे सुसज्जित स्त्रियों के समान हैं (शुक्र० २।८२)। धर्म शास्त्रों और भिन्न २ प्राचीन क़ानूनों के पढ़ने से मालूम होता है उन मन्त्रिपदों पर, ऐसे विद्वान् नीति निपुण और निष्पक्षपात पुरुष ही, नियत किये जाते थे जिन पर कि सारे राष्ट्र को पूर्ण विश्वास हो। वे अपने को राजा का सेवक नहीं, अपितु राष्ट्र का सेवक समझते थे। शुक्राचार्य कहते हैं कि मन्त्री राजा की सेवा के लिये नियुक्त नहीं किया जाता, किन्तु राष्ट्र की सेवा के लिये नियुक्त किया जाता है। राष्ट्र के हित में यदि राजा का अनिष्ट भी होता हो तब भी उसे राष्ट्र का हित ही करना चाहिये। इस प्रकार राजा इन मन्त्रियों की शक्ति शालिनी सभा से ऐसा बद्ध था कि वह स्वार्थ-वश प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता था।

इस के अतिरिक्त धर्म शास्त्रों में प्राचीन क़ानूनों के बनाने वाले विद्वानों ने राजा को बारबार ऐसी कठोर वाणी में सावधान किया है तथा उस पर ऐसे धार्मिक प्रतिबन्ध रक्खे हैं कि जिन से वह उच्छृङ्खल नहीं हो सके। उसके लिये जो दण्ड उन्होंने लिखे हैं वे अन्य पुरुषों की अपेक्षा कठोर हैं। अर्थात् राजा भी क़ानून से बाहर नहीं था। मनु लिखते हैं कि जिस अपराध पर एक साधा-

रण व्यक्ति को एक कार्षापण जुर्माना देना पड़ता है राजा को उस अपराध के लिये एक हजार कार्षापण देना पड़ेगा (८,३३६)। इसी प्रकार विवाद चिन्तामणि में लिखा है कि जिस अपराध पर एक साधारण व्यक्ति को एक तोला ताम्र का जुर्माना देना पड़ता है राजा को वही अपराध करने पर एक हजार तोला ताम्र का देना पड़ेगा [टागोर का ट्रान्सलेशन २२१ पृष्ठ]। प्राचीन समय में राजा की यह शक्ति नहीं थी कि वह किसी निरपराध व्यक्ति को क्रोध या स्वार्थवश दण्ड देसके। कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखा है कि यदि राजा किसी निरपराध व्यक्ति को दण्ड देता है तो उससे तीस गुणा जुर्माना राजा को देना पड़ेगा जिसको वह वरुण देवता के नाम पर जल में छोड़ेगा [२९६ पृष्ठ ट्रान्सलेशन]॥

इस प्रकार के प्रमाणों से मालूम होता है कि राज सत्ता को प्रजासत्ता का अनुगामी बनाने के लिये प्राचीन समय में भी नाना प्रकार के प्रबन्ध किये गये थे।

उस समय शासन में प्रजा का कितना अधिकार था इस बात को जानने के लिये एक और बात को ध्यान में रखना चाहिये। राष्ट्र का शासन उस समय इतना केन्द्रित (Centralised) नहीं था जितना कि आजकल होगया है। उदाहरणार्थ आज दिल्ली में सारे भारत के भाग्य का निश्चय होजाता है। जो क़ानून या आज्ञा आज दिल्ली में जाहिर की जाती है वह सैंकड़ों मील दूर वर्तमान कांगड़ी जैसे छोटे से ग्राम में भी उसी तरह लग जाती है। अर्थात् आज कांगड़ी जैसे ग्राम के शासन का केन्द्र भी दिल्ली में है किन्तु प्राचीन काल में ऐसा नहीं था कांगड़ी ग्राम के शासन का केन्द्र उस समय सैं-

कड़ों मील दूर नहीं था अपितु कांगड़ा ग्राम में ही वर्तमान था। कांगड़ा ग्राम के भाग्य का निश्चय दिल्ली में नहीं होता था अपितु कांगड़ा ग्राम में ही होता था। अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल में राष्ट्र का शासन अधिकतर स्थानीय था और इतना केन्द्रित नहीं था जितना वर्तमान काल में होगया है। आज स्थानीय सरकारें (Loeal govt) सर्वथा मुख्य सरकारों (Centrel govt) के आधीन हैं। परन्तु प्राचीन काल में स्थानीय गवर्नमेन्ट बहुत अधिक स्वतन्त्र थी और मुख्य गवर्नमेन्ट उस में बहुत कम हस्तक्षेप करती थी। राष्ट्र के भिन्न २ ग्राम और नगर राष्ठ्र के राजा को निश्चित कर देते थे किन्तु राजा उन के अन्तरीय शासन में कभी अधिक हस्ताक्षेप नहीं करता था। ग्रामों, नगरों और भिन्न २ छोटी २ जातियों का शासन तत्रस्थ निवासियों के अपने हाथों में था, वे स्थानीय नियमों के बनाने, प्रबन्ध करने, और न्याय देने, में सर्वथा स्वतन्त्र थे। अर्थात् स्थानीय शासन अति प्राचीन काल से भारत में सदा प्रजा सत्तात्मक ही होता चला आया है। भेद इतना ही है कि आज सभ्य संसार में प्रजा सत्तात्मक शासन विस्तृत क्षेत्र में काम में लाया जारहा है प्राचीन काल में वह इतने विस्तृत क्षेत्र में काम में नहीं लाया गया था। इस लिये प्रजा सत्तात्मक शासन प्राचीन भारत वासियों को अज्ञात था यह नहीं कहा जासकता।

प्रजा सतात्मक शासन का ही पर्याय वाचक शब्द स्वराज्य है, जिस राष्ट्र में राज सत्ता, प्रजा सत्ता के आधीन है वहां स्वराज्य है; जिसमें प्रजा सत्ता राज सत्ता के आधीन है वहां परराज्य है। स्वराज्य के लिये यह आवश्यक नहीं कि, राज्य अपने देशी राजा के हाथ में हो; विदेशी राजा के होते हुए भी स्वराज्य होसकता है, और स्वदेशी राजा के होते हुए भी पर राज्य होसकता है। यथा भारत की अनेक

रियासतों में स्वदेशी राजाओं के होने पर भी वहां स्वराज्य नहीं है दूसरी ओर वृटिश भारत में यदि राज सत्ता प्रजा सत्ता के आधीन होजाय तो विदेशी राजा के होते हुए भी भारत में स्वराज्य है ऐसा कहा जासकता । इस लिये हम जो अगले पृष्ठों में सिद्ध करने का यत्न करेंगे कि प्राचीन भारत में स्वराज्य था उसका अभिप्राय यह है कि उस समय राज सत्ता प्रजा सत्ता के आधीन थी । इस बात की सिद्धि के लिये हम क्रमशः निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे ।

(१) शासन में राजा का स्वार्थ प्रजा के स्वार्थ के सन्मुख गौण समझा जाता था (प्रथम अध्याय)

(२) अनेक सभा समितियों द्वारा राजा का अधिकार नियन्त्रित था (द्वितीय अध्याय)

(३) राजा को राज्याधिकार प्रजा की ओर से दिया हुआ समझा जाता था (३ तीय अ०)

(४) भारत के इतिहास में शुद्ध प्रजा सत्तात्मक शासन की अनेक साक्षियां (चतुर्थ अ०)

(५) राज्य को एक धार्मिक संस्था समझा जाता था (पञ्चम अध्याय)

ऐतिहासिक सत्यता और भारत के खोये हुए प्राचीन गौरव के जिज्ञासु पुरुषों का यदि यह लेख कुछ भी मनोरञ्जन कर सकेगा तो मैं अपने इस तुच्छ यत्न को सर्वथा सफल समझूंगा ।

धर्मदत्त

प्रथम अध्याय

एकाधिकारी राजा:—

प्रजा सुखे सुखं 'राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं 'हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥

चाणक्यार्थ शास्त्र

धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रं यस्यावसीदति । महा, ॥

आज कल न केवल साधारण जनता के अन्दर, परन्तु अच्छे सुशिक्षित पुरुषों के दिलों में इस प्रकार के अनेक विश्वास घर किये हुए हैं कि प्राचीन भारत वर्ष के एकाधिकारी राजा, या उन देशों के राजा, जहां न परिमित राजसत्ता द्वारा और नाहीं प्रजासत्तात्मक राज पद्धति द्वारा शासन होता था; अत्यन्त स्वेच्छाचारी तथा मनमाने तौर पर राज्य करते थे। वे बलात्कार प्रजाओं को अपनी इच्छा के अनुसार चलाते तथा उन के स्वाभाविक मानवीय अधिकारों को भी अपने स्वार्थ के लिये पद दलित करते थे। वे अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे तथा लोग भी उन्हें दैवीय शक्ति से युक्त समझ कर डर रखते थे। वे सारे राज्य को अपनी संपत्ति मानकर उसको अपने भोग विलास का साधन समझते थे। वे प्रजा के हित से अपने हित को ऊंचा समझते थे, तथा प्रजा की इच्छा से अपनी इच्छा को प्रबल समझते थे। परन्तु इस के अन्दर कुछ सत्य का अंश है कि

नहीं, यही इस अध्याय में विचारणीय है। प्राचीन विद्वान् राजा को क्या समझते थे इस से पहले यह आवश्यक है कि वे राज्य और राजा की उत्पत्ति क्यों और किस प्रकार मानते थे इस पर कुछ दृष्टि डाली जाय। इसी से उपर्युक्त विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डल जायेगा। संसार के नाना प्राणियों में से कुछ ऐसे हैं जो स्वभावतः ही समूह में रहना पसंद करते हैं, तथा कुछ ऐसे हैं जो सदा अलग् अलग् रहते हैं। यदि पूछा जाय कि इन श्रेणियों में से मनुष्य किस श्रेणी का है तो प्रत्येक का उत्तर होगा कि मनुष्य पहली श्रेणी का है। मनुष्य अलग् रहने की अपेक्षा स्वभावतः ही संघ में रहना पसंद करता है। इसी लिये यह एक प्रकार लोकोक्ति सी हो गई है कि "मनुष्य सामाजिक प्राणी है"। यदि एक परिवार का प्रबन्ध परिवार के पिता या संरक्षक के बिना गड़बड़ तथा अस्तव्यस्त हो जाता है तो मनुष्य समाज का प्रबन्ध तो किसी प्रबन्धकर्त्ता या निरीक्षक के बिना एक दिन के लिये भी चलना कठिन है। अतः मनुष्य समाज को अपने प्रबन्ध के लिये कोई न कोई शक्ति शाली पुरुष, सामूहिक प्रबन्ध के चलाने के लिये अवश्य नियत करना पड़ता है।

हमारे उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि जब पहले पहल मनुष्य उत्पन्न हुआ तो उसके साथ ही पारिवारिक जीवन का आरम्भ हुआ। परिवार की संस्था ने समाज रूपी वृक्ष की उत्पत्ति के लिये अंकुर का काम किया। और जब समाज उत्पन्न हुआ तो उस के सामूहिक बंदोबस्त के लिये राजा और राज्य संस्था की उत्पत्ति होनी आवश्यक ही थी। इस प्रकार राज्य की उत्पत्ति समाज की उत्पति का एक स्वाभाविक परिणाम है। अतः जिस प्रकार यह लोकोक्ति ठीक है कि

मनुष्य सामाजिक प्राणी है उसी प्रकार ग्रीस के प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू का यह कथन भी कि "मनुष्य स्वभावतः राज्य के अंदर रहने वाला प्राणी है" उतना ही ठीक और युक्ति युक्त है। क्योंकि जिस प्रकार एक परिवार हो, परन्तु कोई उसका पिता या संरक्षक न हो, यह असंभव है उसी प्रकार मनुष्य समाज हो परन्तु राज्य की संस्था और राजा न हो यह असंभव है और यदि कोई ऐसी समाज हो, तो वह शीघ्र संसार से कूच कर जायगी। क्योंकि जिस प्रकार एक परिवार को दो ही बातें अभीष्ट हैं एक रक्षा या प्रबन्ध, और दूसरी अपनी सर्व प्रकार की उन्नति, उसी प्रकार एक मनुष्य समाज को यदि अभीष्ट हो कि उसका प्रबन्ध तथा दूसरा सर्वांगीण उन्नति निरन्तर चलती रहे तो उसके लिये राज्य संस्था और राजा को बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

अब देखिये ठीक यही भाव हमारे प्राचीन विद्वानों का भी था। वे राज्य को समाज के लिये आवश्यक संस्था समझते थे रामायण में वाल्मीकि मुनि कहते हैं:—

"अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्"

अर्थात् जिस राष्ट्र में राजा और राज संस्था नहीं वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। * इसी प्रकार महाभारत में व्यास मुनि कहते हैं कि पहले २ जब मनुष्य उत्पन्न हुए वे परस्पर धर्म पूर्वक व्यवहार करते थे एक मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये दूसरे को हानि नहीं पहुंचाता

---

* मज्जेत्त्रयी दण्डनीतौ हतायां, सर्वे धर्माः प्रक्षये युर्विवृद्धाः ।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे॥
सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राजधर्मे प्रतिष्ठाः ।
सर्वे लोका राजधर्मे प्रतिष्ठाः ॥ शान्ति । ६७ । २८— २९

था, प्रत्युत एक दूसरे की रक्षा करता था "धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्ति-स्म परस्परम्" एक प्रकार धर्म ही उनका शासक था। परन्तु यह अवस्था सदा नहीं रह सकती थी। लोग लोभ के कारण अप्राप्त वस्तुओं को लेने की लालसा करने लगे इस प्रकार राग द्वेष से प्रेरित हो, उन्होंने कर्तव्याकर्तव्य, वाच्यावाच्य गम्यागम्य—भक्ष्या भक्ष्य दोषा दोष को भुला दिया। इस गड़बड़ अवस्था को सुधारने तथा धर्म के स्थापन करने के लिये प्रजाओं ने राजा तथा राज संस्था बनाई। सबसे पहला राजा पृथु हुआ देखिये महाभारत में—

"ऋषिभिश्च प्रजापालै ब्राह्मणैश्चा भिषेचितः"।

अर्थात् ऋषियों—ब्राह्मणों और प्रजा के बडे आदमियों ने पृथु को राजसिंहासन पर बिठाया। और पृथु ने सारी प्रजाओं में धर्म का स्थापन किया।

तेन धर्मोत्तरश्चायं कृतो लोको महात्मना।
रञ्जिताश्च प्रजाः सर्वा तेन राजेति शब्द्यते॥

अर्थात् उसने सारी प्रजाओं का रञ्जन किया अतः उसका नाम राजा पड़ा। आगे व्यास भगवान् कहते हैं जिस राष्ट्र में राजा होता है वहां न तो आधि रहती है, दुर्भिक्ष दैत्य के वहां दर्शन नहीं होते और ना ही वहां चोरों का भय रहता है। इस लिये वे कहते हैं कि जो राष्ट्र और मनुष्य समाज अपना कल्याण चाहें उन्हें अवश्य राजा तथा राज्य संस्था स्थापित करनी चाहिये।

(१)"एवं ये भूति मिच्छेयुः पृथिव्यां मानवाः क्वचित्।
कुर्युः राजान मेवाग्रे **प्रजानुग्रहकारणात्**" शान्ति। ६७।३२॥

(२) "तस्माद्राजैव कर्तव्यः **सततं भूति मिच्छता**"।
(३) **"राष्ट्रस्यैतत्कृत्यतमं राज्ञ एवाभिषेचनम्"**॥

अर्थात् जो राष्ट्र या मनुष्य अपनी उन्नति वैभव को स्थिर रखना चाहें उन्हें राजा का बनाना अत्यन्त आवश्यक है। मनुस्मृति में मनु महाराज भी राजा की उत्पत्ति क्यों हुई इस विषय में लिखते हैं कि "अपने २ धर्म में लगे हुये चारों वर्ण वालों तथा चारों आश्रम वासियों की रक्षा के लिये ही राजा की उत्पत्ति हुई है। *

इस प्रकार जो भारतवर्ष यह मानता है कि राजा की उत्पत्ति ही राष्ट्र की × रक्षा तथा × उन्नति के लिये हुई है वह राजा के स्वेच्छाचार और अत्याचारों के नीचे कैसे सिर झुका सकता था वह राजा को कैसे अनुचित अधिकार दे सकता था। स्वेच्छाचारी राजाओं को भारत ने अत्यन्त घृणा के साथ सिंहासन से उठाकर तिनके की नाईं नीचे फैंक दिया है इस विषय को हम एक पृथक अध्याय में लिखेंगे। यहां पर केवल प्राचीन भारत के राजाओं के विषय में जो असत्य विश्वास लोगों के हृदयों में जमे हुए हैं उन की एक एक करके परीक्षा करनी है।

क्या राजा स्वेच्छाचारी हो सकता था?

राजा लोग मन माना अत्याचार करते थे तथा प्रजायें भी मौन धारण कर उन अत्याचारों को सह लेती थीं, यह विश्वास बहुत

*** स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषा मनु पूर्वशः**
वर्णाना माश्रमाणां च राजा सृष्टो भिरक्षिता॥ मनु० ।७। ३५॥
महा कवि कालिदास भी कहते हैं "नृपस्य वर्णाश्रम पालनं
हियत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः"।

लोगों का है इसका पूर्ण समाधान तो समस्त पुस्तक के पढ़ने के अनन्तर ही हो सकता है तो भी यहां पर थोड़ा विचार करना लाभदायक होगा।

व्यास भगवान् कहते हैं कि जब मनु को सब प्रजाओं की बागडोर दीगई तो उन को यह आदेश कर दिया गया था कि:—

"विभज्य दण्डं, रक्ष्यास्तु धर्मतो न यदृच्छया"।

महाभारत शान्ति·

अर्थात् "दण्ड द्वारा प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है परन्तु वह दण्ड न्याय पूर्वक देना चाहिये न कि स्वेच्छाचारिता से।" व्यास आदि समस्त प्राचीन ऋषियों ने तथा नीति शास्त्रकारों ने राजा को स्थान २ पर स्वेच्छाचारिता से रोका है। मनु महाराज कहते हैं कि "जो नीच क्षुद्र राजा अपने लाभ के लिये किसी को सताता है वह उसी दण्ड से मारा जाता है तथा धर्म तथा न्याय पर स्थित न रहकर स्वार्थ सिद्धि के लिये दण्ड का प्रयोग करने वाले राजा को वह दण्ड ही बन्धु बान्धवों सहित मार कर छोड़ता है" ॥ † मनु की आवाज इस विषय में देखिये कितनी कठोर होगई है, वे कहते हैं "जो राजा मोहवश होकर राष्ट्र को सताता है वह शीघ्र ही न केवल राज्य से ही परन्तु प्राणों से भी सपरिवार जुदा कर दिया जाता है"। +

---

† कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ ७ । २८ ॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ ७।२८ ॥

\+ मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ॥ ७ । १११ ॥
कच्चिच्छृणोषि वृद्धानां धर्मार्थ सहिताः गिरः
नित्यमर्थ विदांतात । यथा धर्मार्थ दर्शिनाम् ॥ सभा । ५ । ११९ ॥

शुक्राचार्य भी स्थान २ पर राजा को स्वेच्छानुसार चलने से बड़ी प्रबल आवाज में रोकते हैं। वे कहते हैं कि राजा, सभा के सभ्यों, राज्याधिकारियों तथा प्रजाओं की सम्मति के अनुसार ही कार्य करे अपनी सम्मति को कभी भी मुख्य न रक्खे"+ देखिये वे कितने जोर से कहते हैं कि:—

" स्वमते न कदाचन " तथा

प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नो ह्यनर्थायैवकल्पते ॥

यदि राजा अपने मत पर चले तो राष्ट्र में बड़े भारी अनर्थ का कारण होगा तथा राज्याधिकारी मण्डल और सारा राष्ट्र उस के विरुद्ध हो जायगा" ÷ । शुक्राचार्य की तो सम्मति है कि चाहे राजा भूख के मारे सूख कर काठ हो जाय पर अपने लिये प्रजा को कभी न सताये" + क्योंकि प्रजा से जो सन्ताप की अग्नि उठती है वह राजा तथा उस के सारे वंश को दग्ध कर के ही शान्त होती है। *

अग्नि पुराण में भी स्वेच्छाचारी राजा के लिये बड़ी घृणा दिखाई गई है। पुराण कहता है कि राष्ट्र को पीड़ित करने वाला राजा चिरकाल के लिये नरक में सड़ता है तथा जो पीड़ा नहीं देता पर प्रजा की रक्षा भी नहीं करता है ऐसे राजा के लिये भी नरक में मन्दिर बन रहा होता है।×

+ सभ्याधिकारि प्रकृति सभासत् सुमते स्थितः
सर्वथास्य नृपः प्राज्ञः स्वमते न कदाचन ॥ २ । ३ ॥

÷ प्रभुः स्वातन्त्र्य मापन्नो ह्यनर्थायैवककल्पते
भिन्न राष्ट्रो भवेत्सद्यो भिन्न प्रकृति रेव च ॥ २ । ४ ॥

+ न कर्षयेत्प्रजा कार्य मिषतश्च नृपः सदा
अपि स्थाणु वदासीत शुष्यन्परिगतः क्षुधा ॥ २ । २६ ॥

* अन्यथा स्वप्रजातापो नृपं दहति सान्वयम् ४ । ४

× राष्ट्रपीड़ा करो राजा नरके वसते चिरम् ॥ २२३ । ७ ॥
अरक्षिताः प्रजायस्य नरकं तस्यमन्दिरम् ॥ २२३ । १४ ॥

स्वेच्छाचारी राजाओं के लिये ऐसे २ कठोर वाक्य सारे नीति तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में भरे पड़े हैं उनको लिख हम इस भाग को लम्बा नहीं करना चाहते । परन्तु ऐसी शंका करने वालों का ध्यान हम "राजा की उत्पत्ति" इस विषय पर खींचना चाहते हैं। जिन प्राचीन भारतीय विद्वानों की सम्मति में राजा की उत्पति ही रक्षा तथा राष्ट्र की उन्नति के लिये हुई थी वे कभी राजा के स्वेच्छाचार को देख सकते थे, यह सर्वथा असम्भव था । उनकी सम्मति में तो राष्ट्र एक बड़ा परिवार था, तथा राजा उसका पितृवत् पालन करने वाला था । व्यास भगवान् लिखते हैं कि "राजा वही राजा है जिस के राज्य रूपी घर में प्रजायें पुत्र के समान निर्भय तथा स्वतन्त्र हो कर विचरती हैं" × इसी प्रकार मनु भी राजा को आज्ञा देते हैं कि "वर्तेत पितृ वन्नृषु" अर्थात् पिता के समान ही राष्ट्र का पालन राजा को करना चाहिये । इसी प्रकार समस्त विद्वानों की एक आवाज़ थी कि राजा का एक मात्र कर्त्तव्य प्रजा का धर्म-पूर्वक पालन करना ही है । * जो राजा रक्षा नहीं करता उसे वे अत्यन्त घृणा के शब्दों में निन्दित और पतित समझते हैं । मनु कहते हैं जो राजा प्रजा से कर लेता है पर रक्षा नहीं करता वह सारी प्रजा के मल का भोग करने वाला है । ÷ व्यास भगवन् तो

× पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तम । ५७ ३४ । शान्तिप०

* क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजाना मेवपालनम्
निर्दिष्ट फल भोक्ताहि राजा धर्मेण युज्यते । ७ ११४

÷ अरक्षितारं राजानं बलि षड्भागहारिणम्
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्र मलहारकम् ॥ ५ । ३०८ ।

ऐसे राजा को चोर और डाकू कह कर याद करते हैं। + शुक्राचार्य तो इन से भी बढ़ गये हैं। वे कहते हैं कि राजा जब तक धमपूर्वक व्यवहार करता है तभी तक राजा कहाता है अन्यथा वह राजा ही नहीं रहता है। ÷ अग्निपुराण में भी 'राजा' इस शब्द को रञ्जन से सिद्ध कर के कहा है कि जो प्रजाओं का रञ्जन करता है वही राजा कहाता है। यह पुराण तो बहुत ही स्पष्ट करके कहता है कि जिस राजा ने अपने राष्ट्र की रक्षा नहीं की वह चाहे कितने ही यज्ञ और तप करे उनका कुछ भी फल न होगा तथा जो प्रजा की रक्षा तथा उन्नति करता है वह यज्ञादि के बिना भी स्वर्ग में जाकर बसेगा। × महाकवि कालिदास भी "तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृति रञ्जनात्" इस श्लोक में राजा शब्द को रञ्जन से ही सिद्ध करते हैं। इस प्रकार जिस देश में राजा वाचक शब्द का ही अर्थ प्रजा का मनोरञ्जन करने वाला हो उस देश में राजा कभी मनमाना अत्याचार कर सकता है, यह सर्वथा असम्भव है।

इस प्रकरण में एक बात और कह कर हम इस प्रकरण को यहीं समाप्त करते हैं। ऊपर कहा गया है कि प्राचीन समय में हमारे देश में राजा को पिता की तरह प्रजा पालन करने की आज्ञा थी। यहां पर शायद्

\+ बलिषड् भागमुद्धृत्यबलिं समुपयोजयेत्
नरक्षति प्रजासम्यक् यः स नृप स्त्वरित तस्करः ॥ १३९ ॥
अ० शान्ति पर्व

÷ यावत्तुधर्मशीलः स्यात्सनृपस्ताव देवहि ४। १० ॥
जनानुरागया लक्ष्म्या राजास्याञ्जन रञ्जनात् ॥ २२०। २४ ॥

× किंयज्ञैः तपसा तस्यप्रजा यस्य न रक्षिताः
सुरक्षिताः प्रजायस्य स्वर्ग स्तस्य गृहोपमः २२३। ९ ॥

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् जान स्टुअर्ट मिल के अनुयायी इस प्रकार के पितृवत् राजा को असभ्यता का चिन्ह समझते हैं, क्योंकि मिल की सम्मति में राजा को पितृवत् समझना असभ्य तथा अर्ध सभ्य देशों में ही बन सकता है। परन्तु उनके प्रति हमारा यह कथन है कि यदि किसी देश में एक सत्ताक राज्य (monarchy) की प्रथा हो और वहां उसे पितृवत् शासन करने वाला माना जाता हो तब तो वह देश अवश्य सभ्यता के ऊंची मंजिल के अभी अधे रास्ते तक पहुंचा समझा जाना चाहिये। परन्तु जिस देश में परिमित राजसत्ता या (Limited ovr constitutional monarchy) की प्रथा जारी हो वहां यदि राजा को पितृवत् शासन करने वाला माना जाता हो तो इस से अधिक सभ्य देश और कोई भी मिलना असम्भव है। भारत-वर्ष में अवाधित राजसत्ता (monrchy) नहीं थी और परिमित राजसत्ता Constititutionelmonarchy) ही थी यह हम आगे सिद्ध करेंगे। इस लिये भारतवर्ष में यदि राजा को पितृवत् पालन करने वाला कहा जाता था तो इस में हमारे लिये कोई भी लज्जा की बात नहीं है, प्रत्युत अत्यन्त सम्मान की बात है।

क्या राजा दैवी माना जाता था ?

यह ऐतिहासिक लोगों का दृढ़ सा विश्वास है कि जिस प्रकार प्राचीनकाल और मध्यकाल के युरोप के देशों में यह विश्वास था कि राजा को ईश्वर की तरफ से तलवार मिली है, संसार में वह ईश्वर का प्रतिनिधि होकर लोगों पर शासन करता है उसी प्रकार भारत में भी राजा को ईश्वरीय गुणों से युक्त समझकर उस से ईश्वर की तरह ही व्यवहार किया जाता था। परन्तु यह विश्वास कितना निर्मूल और अयुक्त है यह थोड़े से विचार से ही पता लग जायगा।

ये लोग अपने प्रमाण के लिये मनुस्मृति के सातवें अध्याय के कुछ श्लोकों का उद्धरण दिया करते हैं जिन में मनुमहाराज ने राजा को अग्नि—यम—वैश्रवणादि पदवियों से विभूषित किया है। राजा के लिये ईश्वर के नामों का प्रयोग देखकर ये लोग कह उठते हैं कि राजा को दिव्य गुणों से अधिष्ठित माना जाता था। परन्तु मनु के उन वाक्यों का अर्थ जानने के लिये क्षण भर व्यास भगवान् की बात सुनिये, वे कहते हैं कि—प्रजापति मनु ने राजा के लिये कहा है कि वह माता है—पिता है—अग्नि है—यम है। परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि क्योंकि वह राष्ट्र के साथ दया से व्यवहार करता है अतः वह पिता है, क्योंकि वह राष्ट्र के अन्दर गरीब और निर्धन से निर्धन के लिये पालना का यत्न करता है अतः वह माता है, क्योंकि वह राष्ट्र के लिए घातक बातों को दग्ध करता है अतः वह अग्नि है, और चूंकि वह दुष्ट पुरुषों को यथोचित दण्ड देता है अतः वह साक्षात् यम है,* इस प्रकार मनु के उन वाक्यों की व्याख्या जो व्यास भगवान ने की है वह मानी जाय या आधुनिक शंका करने वालों की! यह पाठक वर्ग आप सोचलें। परन्तु यह कहा जासकता है कि इन विशेषणों के अतिरिक्त मनु ने राजा को वायु—कुबेर—वैवस्वत आदि भी कहा है उनका क्या अर्थ हो सकता है? परन्तु आइये देखे अग्नि पुराण इस विषय में क्या कहता है। उक्त पुराण में लिखा है कि चूंकि राजा अपने गुप्त चरों से सारे राज्य में व्याप्त रहता है अतः वह वायु

---

* माता पिता गुरुर्गोप्ता वन्हि वैश्रवणो यमः।
सप्तराज्ञो गुणा नेतान्मनुराहप्रजापतिः।
पिताहि राजा राष्ट्रस्य प्रजानां योऽनुकम्पनः।
सम्भावयति माते व दीन मप्युपपद्यते।
दहत्यग्निरिवानिष्टान् यमयन्नसतो यमः॥ शान्ति। १३९ अ०॥

है चूंकि वह सभी अपराधों का निग्रह करता है अतः वह वैवस्वत है। और जब वह पापों का नाश करता है तो अग्नि कहाता जब वह सत्पात्रों को धन आदि का दान करता है तो कुबेर कहाता है * । इस प्रकार मनु के आधार पर राजा को देवांशों से बना हुआ मानने वालों का सारा भ्रम मिट जाता है।

राजा को देवांश मानना तो दूर रहा उसको राष्ट्र के धार्मिक महापुरुषों से भी कुछ विशेष नहीं माना गया। व्यास भगवान् कहते हैं कि राजा धार्मिक पुरुषों की सहायता करे तथा उन के तुल्य ही अपने को समझे क्योंकि जिस प्रकार उनके हाथ-भुजायें-ग्रीवायें हैं उसी प्रकार इस की भी है जिस प्रकार उन के बुद्धि तथा इन्द्रियां हैं उस से कुछ भी भिन्न इसकी नहीं हैं, जिस प्रकार उनके मुख और पेट हैं, उसी तरह इस के भी हैं तथा जिस प्रकार उन्हें सुख दुःख होते हैं उस प्रकार इसको भी होते हैं अतः वह सब बातों में उनके समान ही अपने को समझे हां दो बातों में यह उन से अधिक है एक तो इसके पास छत्र है दूसरा वह आज्ञा दे सकता है + । इसी प्रकार उस समय

---

* जगद् व्याप्नोति वैचारैरतो राजा समीरणः ।
दोष निग्रह कारित्वा द्राजा वैवस्वतः प्रभुः ॥ २२५ अ० ॥
यदादहति दुर्बुद्धिस्तदा भवति पावकः ।
यदा धनं द्विजातिभ्यो दद्या त्तस्माद्धनेश्वरः॥ २२५ अ०

\+ धर्मे च निरतान्साधू न चलान चलानिव ।
सहायं सततं कुर्याद्राजा भूति परिष्कृतः ॥
तैश्च तुल्यो भवेद्भोगैश्छत्र मात्राज्ञयाधिकः ॥ ५७ अ० । २५ ॥
तुल्य पाणि भुज ग्रोव स्तुल्य बुद्धीन्द्रियात्मकः ।
तुल्य दुःख सुखात्मा च तुल्य पृष्ट मुखोदरः ॥ ५६ । ६७ ॥

यह विश्वास था कि राजा अच्छे पुरुषों तथा ब्राह्मणों से नीचे है। उस का कर्तव्य है कि ऐसे पुरुषों का पहले नमस्कार करे तथा उनके प्रति विनीतभाव से रहे। मनु महाराज आज्ञा देते हैं कि राजा प्रति दिन प्रातःकाल उठकर वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को नमस्कार करे तथा जिस प्रकार वे कहें उसी प्रकार राज्य कार्य करे।" * तथा आगे कहा है कि राजा ब्राह्मणों से विनय सीखे क्योंकि जो राजा उद्धत तथा स्वेच्छाचारी हो जाता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है"। स्वेच्छाचार तथा उद्धृत पना दिखा कर अनेक राजा नष्ट हो चुके हैं और विनीत होने के कारण अनेक बन वासी साधारण पुरुषों ने भी राजसिंहासन पाया है"। आगे वे उन राजाओं का नाम लिखते हैं जो स्वेच्छाचार के कारण सिंहासन से उतारे जा चुके हैं और वे ये हैं वेन, नहुष—सुदास—यवन सुमुख—तथा निमि ×

---

* ब्राह्मणा न्पर्युपासीत प्रात रुत्थाय पार्थिवः।
त्रैविद्य वृद्धान्विदुष स्तिष्ठेत्तेषांच च शासने। ७। ३७॥

× विनीतात्मा हि नृपति र्न विनश्यति कर्हिचित्।
वहवो ऽविनया न्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः॥
वनस्था अपिराज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे॥ ७। ४०॥
वेनो विनष्टो ऽविनया न्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेवच॥ ७। ४१॥
मत्स्य पुराण भी राजा को विद्वान् ब्राह्मणों से।
विनयसीखने के लिये कहता है।
वृद्धान्हि नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्माचनित्यशः=
समग्रां वशगां कुर्यात्पृथिवीं नात्रसंशयः=
वहवोऽविनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदा=
बनस्थाश्चैव राज्यानि विनया त्प्रतिपेदिरे॥ २१५ अ०॥

क्या राजा का स्वार्थ प्रजा के स्वार्थ से प्रबल समझा जाता था:—

यह भी लोगों का विश्वास है कि यदि कभी किसी बात पर राजा और प्रजा का स्वार्थ टक्कर खाता था तो राजा को अधिकार होता था कि वह प्रजा के स्वार्थ को लात मार कर अपना स्वार्थ ही सिद्ध करे। यदि यह बात ठीक हो तो मानना होगा कि प्राचीन विद्वानों की सम्मति में प्रजा राजा के लिये थी, न कि राजा प्रजा के लिये। परन्तु हम यह आगे देखेंगे कि उन के सिद्धान्त में सदा राजा प्रजा के लिये रहा है न कि प्रजा राजा के लिये; यहां हम दो एक नीतिकारों के वाक्यों का उल्लेख करते हैं जिस से पता लगेगा कि यदि प्रजा की किसी भलाई में राजा का स्वार्थ टकराता हो तो राजा को अपना स्वार्थ सर्वथा भुला देना चाहिये। व्यास भगवान् महाराज भीष्म के मुख से कहलवाते हैं कि:—

वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदाधर्मानुवर्तिना
स्वं प्रियन्तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत् ॥ ५६ । ४६ ॥

अर्थात् हे राजन्! धर्म और न्याय यही कहता है कि जिस प्रकार भी लोकहित होता हो राजा को वही करना चाहिये चाहे इस से उसका कितना भी अप्रिय होता हो। इस वाक्य का स्पष्ट यही अभिप्राय है कि राजा प्रजा के स्वार्थ के सामने आने पर अपने स्वार्थ की तिलभर भी परवाह न करे।

इसी प्रकार शुक्राचार्य भी अपने नीति ग्रन्थ में जब राजा के दस अधिकारियों में से "प्रतिनिधि" नामक अधिकारी के कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हैं, तो लिखते हैं।

अहितं चापि यत्कार्यं सद्यः कर्तुं यदोचितम्।
अकर्तुं यद्धित मपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा॥

अर्थात् यदि किसी कार्य के करने में ऊपर से अहित मालूम होता हो, तथा **उस के करने में राजा का भी अहित होता हो** परन्तु वास्तव में उस कार्य से प्रजा का हित हो तो प्रतिनिधि को चाहिये वह उस कार्य को अवश्य करे। पाठक वर्ग! यह क्या ही सुन्दर नीति वाक्य है। इस से प्रथम तो यह पता लगता है कि अधिकारी वर्ग के लिये प्रजा का स्वार्थ राजा के स्वार्थ से ऊंचा है। तथा दूसरा यह भी पता लगता है कि उस समय अधिकारी लोगों का प्रजा के समक्ष उत्तर दातृत्व भी था। क्योंकि वे समझते थे कि थोड़ी देर के लिये प्रजा को खुश करने वाला काम कर के यदि स्थिर भलाई का काम न किया तो उस के भावी में जो प्रजा में अशान्ति तथा असन्तोष उत्पन्न होंगे उन से इन को अत्यन्त हानि होगी। तथा स्टेट्समैन का काम भी यही है कि वे प्रजा के क्षणिक विचारों के बहाव में न बह कर जो स्थिर तथा चिरकालिक भलाई हो उन्हीं को लक्ष्य में रखें। अस्तु उपरोक्त शंका कर ने वालों के लिये शुक्राचार्य का एक और वाक्य अत्यन्त उपयुक्त होगा। देखिये क्या कठोर वाक्य है:—

न कर्षयेत्प्रजां कार्यं भिषनश्च नृपः सदा।
अपि स्थाणु वदासीत शुष्यन्परिगतः क्षुधा॥ २।२६॥

अर्थात् चाहे राजा भूख से व्याकुल हो, सूख कर लकड़ी हो जाय पर अपनी कार्य सिद्धि या स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रजा के स्वार्थ का दलन न करे। जिन प्राचीन विद्वानों की इस विषय में इस प्रकार की प्रबल

सम्मति हो उन के लिये यह कहना कि वे राजा के स्वार्थ को प्रजा के स्वार्थ से ऊंचा समझते थे सचाई का अपलाप करना है।

पाठक वर्ग! क्षणभर के लिए अपनी ऐतिहासिक दिव्य दृष्टि को आज से ५००० वर्ष पहले तत्कालीन इन्द्रप्रस्थ नगरी के एक भव्य भवन के ऊपर ले जाइये। वह देखिये एक मामूली ब्राह्मण के निर्भयता पूर्ण शब्द सुनाई दे रहे हैं। ज़रा सुनिये वह राजमहल के सन्मुख आकर क्या कह रहा है "राजन् जो राजा प्रजा की उपज का छठा भाग राज कोष से लेता है पर प्रजा की रक्षा नहीं करता वह बड़े भारी पाप का भागी है। मुझ ग़रीब ब्राह्मण की गौएं एक चोर ने चुराली हैं और तुम्हारा कोई भी राज पुरुष उनको छुडाने वाला मुझे नहीं दीखता। हाय घोर अनर्थ हो रहा है"। ब्राह्मण के ये वाक्य धनुर्धर अर्जुन सुन लेता है और धनुष बाण लेने के लिये गृह में प्रवेश करता है। वह जानता है कि अन्दर द्रौपदी तथा युधिष्ठिर महाराज विद्यमान हैं, ऐसे समय में गृह में प्रवेश करने से उसकी प्रतिज्ञा टूटेगी तथा उसे इस पाप के लिये वर्ष भर तक तपस्विवेश में तीर्थ यात्रा करनी पड़ेगी। परन्तु वह उस समय प्रजा के एक ब्राह्मण के दुःख के सन्मुख अपने सुख को भूल जाता है। धनुषबाण ले स्वयं उसकी गौएं छुड़ा कर ले आता है। क्या आज कल के संसार में कोई राजा या राजकुलत्व का दम भरने वाला इस प्रकार का अलौकिक स्वार्थ त्याग दिखा सकता है।

प्रजासुखे सुखंराज्ञः प्रजानांच हिते हितम्।
नात्म प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

चाणक्य अर्थशास्त्र २ प्रक०

क्या राजा के लिये कोई उत्तर दातृत्व नहीं समझा जाता था:—

यह भी साधारण विश्वास है कि प्राचीन काल में राजाओं के लिये राज्य को भोग का साधन समझा जाता था। राजा लोगों का काम, एक मात्र ऐश्वर्य का भोग करना है, तथा प्रजा के प्रति उन का किसी प्रकार का भी उत्तर दातृत्व नहीं है यही प्राचीन लोगों का विश्वास था। पर पाठक वर्ग क्या इस प्रकार का कथन उन लोगों के मान का ध्वंस करना नहीं है, जो पुकार पुकार कहते थे कि "महदायास साध्यंवै, न राज्यं भोगसाधनम्" राज्य कोई भोग का साधन नहीं है राज्य के नियन्त्रण के लिये बड़े भारी परिश्रम की आवश्यकता है। तथा जिस के लिये राम वन में जाते हुए जब गुह को मिलते हैं तो उसे उपदेश करते हैं कि

अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा
भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम्॥ १०२। ७२ अयो०॥

अर्थात् हे गुह? अत्यन्त सावधान हो कर राज करो राज्य कोई सरल कार्य नहीं है यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। सारे प्राचीन संस्कृत साहित्य के अन्दर जहां जहां भी राजा का वर्णन पाते हैं वहां उस के लिये अनेक गुणों का उपदेश भी साथ ही पाते हैं। व्यास भगवान् कहते हैं कि "जो राजा कामी है जो निरन्तर अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा रहता है, जो क्रूर है और जो लोभ के वश में पड़ा हुआ है ऐसा राजा कभी भी प्रजाओं की पालना नहीं कर सकता *"

* नहि कामात्मना राज्ञा सततं काम बुद्धिना।
नृशंसेनाति लुब्धेन शक्याः पालयितुं प्रजाः॥ ७५ अ०। १४ शान्ति।

व्यास भगवान् तो कहते हैं कि जो अपने आत्मा का राजा नहीं है वह दूसरों का राजा कैसे बन सकता है । इस लिये वे कहते हैं कि "राजा को शत्रुओं का विजय करने से पहले अपने आत्मा पर विजय पानी चाहिये क्यों कि जिसने अपने आत्मा पर भी विजय नहीं पाई है वह शत्रुओं पर विजय कैसे पायगा । महर्षि व्यास का अनुमोदन करते हुए महाराज मनु राजा को जितेन्द्रिय और संयमी होने का उपदेश देते हुए लिखते हैं कि "राजा को चाहिये कि वह दिन रात इन्द्रियों के जीतने में यत्न करे क्योंकि प्रजाओं को वही वश में रख सकेगा जिसने पहले अपनी इन्द्रियों को वश में रख लिया है" ।* इस के आगे वे आप बताते हैं कि काम, क्रोध तथा लोभ से उत्पन्न होने वाले जितने भी दोष हैं उन का त्याग राजा बड़े यत्न से करे । क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न होने वाले दोषों का ग्रास बनेगा उस को धन और धर्म दोनों छोड़ कर चले जांयगे । और जो राजा क्रोध से उत्पन्न होने वाले दोषों का शिकार होगा उसे राज्याधिकारी और प्रजायें मिलकर राज्य से च्युत कर देंगी।" नीतिज्ञ शिरोमणि चाणक्य भी राजा को जितेन्द्रिय होने का उपदेश देते हुए कहता है कि दाण्डक्य नाम राजा ने एक ब्राह्मण की कन्या का हरण किया वह प्रजा द्वारा मरवा दिया गया । चाणक्य कहता है कि जितेन्द्रिय न होने के कारण जनमेजय, तालजंघ; ऐल, अज, विन्दु आदि राजा नष्ट किये जा चुके हैं ।

आत्मा जेयः सदा राज्ञा ततो जेयाश्च शत्रवः ।
अजितात्मा नरपति र्विजयेत कथंरिपून ॥ ६६ । ४ शान्ति

* इन्द्रियाणां जयेयोगं समतिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ मनु० ॥

इस प्रकार के अनेक नीति वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत के प्राचीन नीतिज्ञ विद्वान् राजा को केवल भोग करने के लिये उत्पन्न हुआ नहीं समझते थे। साथ ही राजा के सिर पर बड़ा भारी उत्तर-दातृत्व था।

प्रजा की उन्नति और अवनति का उत्तर-दाता राजा समझा जाता था। तथा राजा को ही प्रजायें फैले हुए धर्म और अधर्म का उत्तरदाता भी समझतीं थीं, क्योंकि यह उस का कर्तव्य है कि वह देश में धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करे। देखिये व्यास भगवान् अनेक स्थानों पर लिखते हैं कि देश में जो पाप होता है उसका एक भाग राजा को पहुंचता है और राजा को ही वह भुगतना पड़ता है तथा देश में जो धर्म होता है उसका भी एक भाग राजा को जाता है + और उसे उसका अच्छा फल मिलता है। इस लिये धर्म बढ़ रहा है या अधर्म बढ़ रहा है यह देखने के लिये राजा को अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में लिखते हैं कि प्रजा में जो पाप होता है उसका आधा भाग राजा को भुगतना पड़ता है तथा इस के विपरीत यदि राजा प्रजा की न्याय से पालना करता है और धर्म की वृद्धि करता है तो प्रजा के पुण्य में से छटा भाग राजा को पहुंचता है। × इसी प्रकार भारत का नीति-विशारद चाणक्य लिखता है कि "राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञश्चैव पुरोहितः अर्थात् राष्ट्र में हुए २ पाप को राजा भोगता है इस लिये उसे चाहिये वह राष्ट्र में पाप न होने दे। क्या भूमण्डल के किसी देश में भी

+ ६७ अ० शान्ति०।

× १३ प्रक०। ३३५—३३६ याज्ञवल्क्यस्मृति।

राजा के सिर पर प्रजा की रक्षा का इतना बड़ा उत्तर-दातृत्व समझा गया है ? हमे तो कोई भी ऐसा देश दिखाई नहीं पड़ता। इन नीति-कारों के वाक्यों से तो स्पष्ट पता लगता है कि वे राष्ट्र और राजा की एक आत्मा मानते हैं। अर्थात् राष्ट्र की रक्षा करता हुआ राजा राष्ट्र की रक्षा नहीं करता पर अपनी रक्षा करता है। और राष्ट्र में धर्म वृद्धि करता हुआ राष्ट्र के लिये पुण्य का संचय नहीं करता पर अपने लिये पुण्य का संचय करता है। इस प्रकार राष्ट्र और राजा के स्वार्थों का अभिन्न मानना भारतीय नीतिकारों की अगाध नीतिज्ञता का परिचय देता है।

और चमत्कार देखिये कि देश की प्रत्येक प्रकार की अवस्था का उत्तर दाता राजा को समझा जाता था। यदि देश में कलियुग की बातों की वृद्धि हो रही है तो उसका भी उत्तर-दाता राजा है, और यदि सतयुग की बातों की वृद्धि हो रही है तो उसका उत्तर-दाता भी राजा ही है। व्यास भगवान् कहते हैं 'क्या समय राजा का कारण है या राजा समय का कारण है, यह संशय मत करो क्योंकि यह निश्चित है कि राजा ही बुरे या भले समय का कारण होता है" * आगे वे कहते हैं कि देश में राजा के दण्ड नीति के अनुसार पालने और न पालने से ही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग आदि आते रहते हैं। जब राजा सर्वथा दण्ड नीति का तिरस्कार करके देश को दुःख देता है तब कलियुग आता है लोग भूखे मरने लगते हैं विद्वानों को भी पेट भरने के लिये अत्यन्त दुःख झेलने पड़ते हैं।

---

* कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा काल कारणम्।
इतिते संशयो माभूत् राजा कालस्य कारणम् ॥ ६९ अ०॥
। ६८। शान्ति।

इत्यादि अनेक भयप्रद चिन्ह दीखने लगते हैं। वे आगे कहते हैं कि +
" राजा ही सतयुग को ला सकता है, राजा ही त्रेता का सुख दिला सकता है, द्वापर का लाना भी राजा के हाथों में है और कलियुग का भयानक दृश्य भी राजा ही दिखा सकता है। आशय यह है कि प्रायः कहा जाता है कि कलियुग है इस लिये राजा खराब है किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये, प्रत्युत राजा खराब है इस लिये कलियुग है।

सुनिये शुक्राचार्य भी इसी विषय में कुछ कह रहे हैं। वे कहते हैं कि धर्म और अधर्म की वृद्धि करने से राजा ही युगों का लाने वाला होता है। देश की अवस्था बुरी है तो न यह युग का दोष है और न यह प्रजाओं का ही अपराध है किन्तु इसका सारा कारण राजा ही है इस विषय का विस्तार करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं कि यदि देश में चोर डाकू—लम्पट—विषयी लोग रहते हैं तो यह दोष राजा का ही है। * पाठक वर्ग यही कारण है कि एक समय था जब हमारे देश में केकय देश के अश्वपति तथा अयोध्या के महाराज दशरथ से सैंकड़ों राजा दम ठोक कर दावे से इस प्रकार से कह

\+ राजा कृत युग स्रष्टा त्रेता या द्वापरस्य च
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ ६९। ६८ शान्ति०

* युगप्रवर्तको राजा धर्माधर्म प्रशिक्षणात्।
युगानां न प्रजानां न, दोषः किन्तु नृपस्यहि ॥ ४-५५-५६-२ ॥
शान्ति पर्व ७७ अ०।

सकते थे कि "नमेस्तेनो जनपदे न कदर्यो नानाहिताग्निः न स्वैरी न स्वैरिणी" तथा "कामविन्न कदर्यो वा नृशंसः क्वचित् द्रष्टुं शक्य मयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः" "सर्वनराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः मुदिताः शील वृत्ताभ्या महर्षयइवमल। इसी प्रकार प्राचीन इतिहासों में अनेक स्थानों पर हम पढ़ते हैं कि बनो से आकर ऋषि लोग राजाओं से देश की सुरक्षा के विषय में नाना प्रकार के प्रश्न पूछते हैं और देश के पति जो उनका उत्तरदतृत्व है उनका उनको स्मरण दिलाते हैं।

इन सब बातों को देख कर कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो यह कहे कि प्राचीनसमय में राजाओं को भोग के लिये उत्पन्न हुआ माना जाता था और उनका कोई उत्तर दातृत्व नहीं समझा जाता था।

राज्ञोयदा जनपदे बहवो राज पूरुषाः
अन्यायेनोपवर्तन्ते तद्राज्ञः किल्विषंमहत् ॥ ९१।१४ शान्ति

क्या राजा राज्य में रहने वाले गरीबों की कोई चिन्ता नहीं करता था?	प्राचीन समय में राज्य की ओर से निर्धन गरीबों की रक्षा तथा भोजन का कोई प्रबन्ध नहीं था। आजकल पश्चिम देशों में निर्धनियों को भूखा न मरने के लिये बहुत से प्रबन्ध

किये गय हैं, यह प्रकार भारत में नहीं था, तथा राजा लोग ऐश्वर्य से मस्त हुए २ इन की कोई चिन्ता नहीं करते थे तथा उन दिनों के विद्वान् नीतिकारों ने भी राजा की ओर से इन का कोई प्रबन्ध नहीं किया था, यह कइयों का विश्वास है। किन्तु उनको व्यास भगवान्

का, जो राजा को आदेश है वह ध्यान में रखना चाहिये। वे कहते हैं कि × " **दीन -अनाथ** जिन के माता पिता कोई नहीं है—३ **वृद्ध** जो कि बुढ़ापे के कारण स्वयम् परिश्रम करने में अशक्त हैं तथा चौथी **विधवा स्त्रियें** जिनको पालने वाले पति मर चुके हैं इन चारों श्रेणियों की जीविका तथा उदर पोषण का प्रबन्ध राजा को करना चाहिये। १ इन चारों श्रेणियों के अतिरिक्त एक और श्रेणी थी जिनका पालन पोषण भी राज्य की तरफ से होता था। वह आश्रम में रहने वाली विद्वान् तपस्वी ब्राह्मणों की श्रेणी थी। ये लोग सदा विद्या पढ़ने तथा दूर २ से आये जिज्ञासु ब्रह्मचारियों को विद्या पढ़ाने में व्यापृत रहते थे। इनके भोजन वस्त्र का प्रबन्ध राजा की ओर से होता था। इन के लिये भी व्यास भगवान राजा को आदेश करते हुए कहते हैं कि यह राजा का कर्तव्य है कि वह इन विद्वानों के आश्रमों में बड़े सत्कार पूजा और मान के साथ समयानुकूल कपड़े, पात्र, और भोजन भेजता रहे। + पाठक वर्ग! आज सभ्य संसार के राज्य भी इन पांच श्रेणियों की रक्षा का ठीक २ प्रबन्ध नहीं करसके हैं। एक और स्थान पर व्यास भगवान् लिखते

× कृपणानाथ वृद्धानां विधवानांच योषिताम्
योग क्षेमञ्चवृत्तिञ्च नित्यमेव प्रकल्पयेत्॥ ८६ अ० । २४। शान्ति।

\+ आश्रमेषु यथाकालं चैलभाजन भोजनम्।
सदैवोपहरेद्राजा सत्कृत्याभ्यर्च्यमान्यच। ८६। २५। शान्ति।
पिताहि राजाराष्ट्रस्य प्रजानांयो ऽनुकम्पनः।
सम्भावयतिमातेव दीनमप्युपपद्यते॥ १००। ५।

हैं कि "राजा का यह धर्म है कि वह प्रजा को प्रसन्न करता हुआ (१) दीन (२) अनाथ (३) और वृद्ध इन तीनों के आंसुओं को पूंछे। ×

ठीक इसी व्यास वाक्य की छाया लेकर कामन्दकाचार्य अपने नीतिसार में लिखते हैं कि राजा तभी धर्म से विचलित नहीं होता है जब कि वह दयादिखाता हुआ राज्य में रहने वाले दुःखी और अनाथों के आसुओं को पूछता है। ॥

व्यास भगवान् कहते हैं कि अन्धों—गूंगों—लंगड़ों—विकृत अंग वालों— और अनाथों के भरण-पोषण का प्रबन्ध स्टेट को करना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत के विद्वान् ग़रीबों और निर्धनों को भी राज्य का अंग समझते थे तथा उनका पालन पोषण राज्य का काम समझते थे।

भिखारियों का तो राज में रहना भी पाप समझा जाता था। जिस प्रकार वे दस्युओं का राज में रहना नहीं देख सकते थे उसी

× कृपणानाथ वृद्धानां यदा श्रूनपरिमार्जति
हर्षसंजनयन्नृणां स राज्ञो धर्म उच्यते। ६१ अ०। ३८ शान्ति

॥ दयामास्थाय परमां धर्मादविचलन्नृपः।
पीडितानामनाथानां कुर्याद् श्रुप्रमार्जनम्॥ ३। ५।
कामन्दकीय नीतिसारः तथाः—

कश्चिदन्धांश्च मूकान्श्च पंगून्व्यंगानवान्धवात्॥
पितेव पासि धर्मज्ञा तथा प्रव्रजितानपि॥ सभा। ५ १२॥

प्रकार भिखारियों का राज में रहना भी उनको अखरता था। व्यास भगवान् कहते हैं "माते राष्ट्रे याचनका भूवन्माचा विद्स्यवः" अर्थात् हे राजन् तेरे राज्य में कोई भिखारी नहीं रहना चाहिये, तथा नाही कोई दस्यु रहना चाहिये। अहो! एक वह समय था जब भारत में राज लोग दावे से कहा करते थे कि उनके राज्य में कोई भिखारी नहीं मिलसकता और कहां आज यह दिन है जब कि भारत के नगर २ में सहस्रों दीन भिखारी भूख से व्याकुल होकर रस्तों पर पड़े २ तड़पा करते हैं।

"नदीनः क्षिसक्लिोवा क्कापिकश्चन॥ बालका ६ १५

इस प्रकार यद्यपि भारत में अनेक समयों पर एकाधिकारी राज्यपद्धति (monarchy) रही है, परन्तु पाठकों ने देखा है कि वे एकाधिकारी राजा इस प्रकार के राज नियमों से बंधे हुए थे कि कभी स्वेच्छाचार या अत्याचार से प्रजा को सता नहीं सकते थे। ऋषियों और धर्म शास्त्र कर्त्ताओं की यह शक्ति थी कि उन्होंने एकाधिकारी राजाओं से भी भारत में कभी अत्याचार नहीं होने दिया, प्रत्युत प्रजा की भलाई का ही उनका बहुत कुछ साधन बनाया। अतः यह कहना कि भारत सदा ही एकाधिकारी राजाओं की क्रीड़ा भूमि रहा है, और भारत में सदा ही एकाधिकारी राजाओं ने मन माना अत्याचार किया है, सर्वथा अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। कोई भी बुद्धिमान् ऐतिहासिक जिस ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का गम्भीर अनुशीलन किया होगा, उनकी इस स्थापना को अत्यन्त तिरस्कार की दृष्टि से देखे

बिना नहीं रहेगा। इस अध्याय में हमने प्राचीन काल के राजाओं के शाब्दिक चित्र खींचने का यत्न किया है। अगले अध्यायों में हम उस समय की बलवती और शक्ति शालिनी प्रजा का राज्य में कौनसा स्थान था इस पर विचार करेंगे।

———

द्वितीय अध्याय

परिमित राजसत्ता

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापते-
र्दुहितरौ संविदाने ॥ अथर्ववेद ।

प्राचीन विद्वान् एक सत्ताधारी स्वेच्छाचारी राजा के शासन से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को अच्छी प्रकार समझते थे । इस लिये उन्होंने राजकीय शक्ति को बहुत परिमित किया हुआ था । वे चाहते थे कि देश भर में जो शासन करने के लिये योग्य से योग्य व्यक्ति हों उन के परामर्श के अनुकूल ही राजा शासन करे तथा अपनी स्वेच्छाचारिता का कभी भी न दिखा सके । उन्होंने राजा पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये हुए थे । प्रथम तो नियम बनाने Legislation की शक्ति राजा से छीन कर योग्य विद्वानों को दी हुई थी । उनके बनाये सूत्रों और स्मृतियों के राजनियमों के सामने राजा को भी सिर झुकाना पड़ता था । दूसरा अमात्यों, सचिवों और ब्राह्मणों की सम्मति के विरुद्ध वह कुछ भी नहीं कर सकता था। सच पूछिये तो सारे शासन की बागडोर इन चुने हुए योग्य पुरुषों के हाथों में होती थी। अमात्यों सचिवों और ब्राह्मणों से बनी हुई राज-सभाओं को Central Govaornement या मुख्य शासक मण्डल कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त स्थानीय प्रबन्ध के लिये स्थानीय सभायें होती थीं। (इनका वर्णन पृथक् अध्याय में किया जायगा) । राजा इन राजसभाओं की सम्मति लिये बिना कोई भी राज्य सम्बन्धी काम नहीं कर सकता था।

राजा राजसंस्था के ऊपर या बाहर नहीं था अपितु राजसंस्था के अन्दर समझा जाता था

राजा राजसंस्था से बाहर नहीं परन्तु वह भी एक अङ्ग है, यह एक भारत का प्राचीन विश्वास है। जब राजा का अभिषेक हुआ करता था तो वह एक वेद * मन्त्र पढ़ा करता था जिस में लिखा है कि राजा कोई पृथक् वस्तु नहीं परन्तु राजा का शरीर राष्ट्र और प्रजाओं से मिलकर बना है। राष्ट्र उसकी पृष्ठ वंश है तथा नाना-प्रकार की प्रजायें उसके नाना अंग हैं [विशोमेऽङ्गानिसर्वतः] इसका अभिप्राय यह हुआ कि राजा को कहा जाता था कि राष्ट्र और प्रजायें उसका शरीर हैं यदि उन को कोई कष्ट या दुःख होगा तो राजा यह मत समझे कि वह किसी और को हो रहा है प्रत्युत उसी को हो रहा है। इस लिये प्रजा और राजा का स्वार्थ भिन्न २ नहीं है जो प्रजा का स्वार्थ है वही राजा का स्वार्थ है।

वेद भगवान् के इसी भाव को लेकर देखिये व्यास ऋषि क्या ही सुन्दर वाक्य कहते हैं। "राजा प्रजानां हृदयं गरीयः प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिम शरीरम्" अर्थात् प्रजा राजा का शरीर है और राजा उस के शरीर में हृदये के समान है। राजा का पृथक् शरीर कोई

* पृष्ठीर्मे राष्ट्र, मुदर मंसौ, ग्रीवाश्च श्रोणी। उरु, अरत्नि जानुनी, विशोमेऽङ्गानिसर्वतः॥ यजु। २०। ८॥
तथा कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिः २ का०। प्र० ६, अ० ५ में भी यही वाक्य है।

नहीं वह प्रजाओं को ही अपना शरीर समझे। + इस वाक्य में कितनी ही सुन्दर रीति से कहा है कि जिस प्रकार हृदय शरीर का एक अंग है और मुख्य अंग है उसी प्रकार राजा सारी राजसंस्था (Constitution) का एक अंग है। इसी प्रकार प्रायः सारे नीतिकारों ने बड़े भारी राज्य रूपी शरीर को सात अंगों में विभक्त किया है और उन अंगों में से एक अंग राजा भी है। हम यहां केवल कामन्दकाचार्य की सम्मति दिखाते हैं। वे अपने नीति-सार में लिखते हैं कि राज्य के सात अंग है (१) स्वामी (२) अमात्य (३) राष्ट्र (४) दुर्ग (५) कोश (६) सेना (७) मित्र (Allies)। परन्तु चूंकि इन सातों की उत्पत्ति स्थान राष्ट्र है अतः यदि राजा इन को दृढ़ बनाना चाहे तो उसे चाहिये कि वह राष्ट्र को ही दृढ़ करे। + क्याकि जितना राष्ट्र उन्नत होगा उतने ही ये अंग भी दृढ़ होंगे। यहां हम स्पष्ट देखते हैं कि राजा या स्वामी को राज्य के सात अंगों में से ही एक अंग गिना गया है। फिर कैसे कहा जा सकता है। कि राजा (Constitution) से ऊपर या बाहर समझा जाता था।

कहा जाता है कि प्राचीन काल में राजा पूर्ण स्वतन्त्र थे, और तो और यदि वे चाहते थे अपने राज्य को किसी दूसरे के हाथ दान दे देते थे। अर्थात् वे राज्य को अपनी निजू सम्पत्ति समझते थे और जिस प्रकार किसी से बिना पूछे अपनी सम्पति को दान किया जाता है उसी प्रकार वे बिना प्रजा की सम्मति लिये राज्य को दान कर देते थे। जैसे हरिश्चन्द्र आदि राजाओं ने पृथ्वी को दान में देदिया था। परन्तु यह बात

\+ राज्यांगानां तुसर्वेषां राष्ट्राद्भवति संभवः।
तस्मात्सर्वप्रयासेन राजा राष्ट्रं समुन्नयेत् ॥ ६। ३॥
काम० नीतिसार।

प्राचीन राजनैतिक सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है, उस समय यह सिद्धान्त माना जाता था कि पृथ्वी राजा की नहीं है। हां प्रजाओं ने उस की रक्षा करने तथा वृद्धि करने के लिये कुछ समय तक उसको नियत किया हुआ है। मीमांसाकार जैमिनि मुनि इस पर अच्छी प्रकार बल देते हैं कि पृथ्वी पर राजा का स्वत्व नहीं है। इस पर कारिकाकार ने वादविवाद किया है। पूर्व पक्षी कहता है कि भूमि राजा का स्वत्व है अतः वह उसको दान कर सकता है परन्तु अन्त में उत्तर पक्षी सिद्धान्त बताता हुआ सिद्ध करता है कि राजा केवल रक्षा करने के लिये नियुक्त है भूमि उसका धन नहीं है अतः वह भूमि को दान में नहीं दे सकता।

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में जब महाराज विश्वकर्मा का ऐन्द्र महाभिषेक होता है, वह इस प्रसन्नता में सारी भूमि ही कश्यप को दान में देने लगता है परन्तु उसी समय पृथ्वी राजा से कहती है "नमा मर्त्यः कश्चन दातु मर्हति" कि तुम मुझे दान में नहीं दे सकते हो। इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि जब महाराज विश्वकर्मा पृथ्वी को दान करने लगे होंगे सारी प्रजा ने इसका विरोध किया होगा कि यह उसका वृथा अभिमान है कि पृथ्वी उस की है, पृथ्वी सारी प्रजा की है और राजा प्रजा की ओर से उसका रक्षक मात्र नियत किया हुआ है। नौकर का यह काम नहीं है कि वह मालिक की वस्तु को दूसरे के हाथ में विना मालिक के पूछे दे सके।

इस प्रकार राजा पर अनेक प्रतिबन्ध थे इन को देख कर भी कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो कहेगा कि प्राचीन काल में राजाओं के स्वेच्छा

---

१ नभूमिः सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वात् ॥ सूत्र ॥
देयानवामहाभूमिः स्वत्वाद्राजाददातुनाम् ।
पालनस्यैव राज्यत्वात्स्वं भूमिर्दीयते न सा ॥ कारिका ॥

चार को रोकने वाला कोई नहीं था, और नाहीं इन के रोकने के लिये कोई प्रतिबन्ध सोचा गया था।

लोक सभायें:— राजा की सत्ता को परिमित करने के लिये भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रयत्न किया गया था। स्वयं वेद भगवान् स्थान स्थान पर सभा समितियों द्वारा राज्य करने का उपदेश देते हैं। उस समय दो राज सभायें होती थी एक का नाम सभा और दूसरी का नाम समिति था। राजा कुछ चुने हुए विद्वान् पुरुषों के साथ बैठ कर विचार करता था इस समूह को सभा कहा जाता था। किन्तु जिस में दूर २ से सर्वसाधारण पुरुष आकर एकत्रित होते थे उसे समिति के नाम से पुकारा जाता था। समिति शब्द का अर्थ भी यही है कि जिस में दूर २ से आकर पुरुष एकत्रित हों। अथर्ववेद सप्तम काण्ड के १२ सू० में भगवान के उपदेश से पता लगता है कि इन सभाओं में बड़े २ विद्वान् पितर इकट्ठे होते थे और राजा को राज्य कार्य के लिये शिक्षा देते थे। राजा इन लोक सभाओं की अवहेलना नहीं कर सकता था क्योंकि ये सभायें प्रजापति परमात्मा से उत्पन्न हुई समझी जाती थीं और अतएव आदिकाल से चली आती थीं। इन सभाओं को **नरिष्ठा** + (कल्याणकारी) के नाम से भी पुकारा जाता था अर्थात् ये मनुष्यों के लिये अत्यन्त उपयोगी समझी जाती थीं। उनमें उपस्थित ज्ञानी और वर्चस्वी सभा-

---

+ नरिष्ठा का जो अर्थ सायणाचार्य ने दिया है उससे पता लगता है कि सभा का और बहु सम्मति का कितना मान था "बहवः सम्भूय यद्येकं वाक्य वदेयुः तद्धिन परैरतिलंघ्यम्।

सदों की सम्मति के अनुसार ही राजा कार्य करता था । ×

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति इत्यादि वेद मन्त्र वेद भगवान् का यह वाक्य कि राजा वही श्रेष्ठ है जो इन लोक सभाओं के पीछे चलने वाला है + उन दिनों भारतवर्ष में गूंज रहा था। राजाओं को इन सभाओं द्वारा प्रजा की सम्मति का पता लगता था और इसके अनुसार चलना भी पडता था । वेद भगवान् कहते हैं कि सभा, समिति सेना और विद्वान् पुरुष उसी राजा के पीछे चलते हैं जो कि प्रजा की सम्मति के पीछे चलता है । अर्थात् जो प्रजा की सम्मति की पर्वाह नहीं करता उसे सभा समिति और सेवा से सहायता की आशा करना व्यर्थ है । * इस लिये राजा लोग सभा—समिति बनाते तथा उनकी सम्मति के अनुसार कार्य भी करते थे । वेद भगवान् राजा को उपदेश देता है कि राजा तीन प्रकार की सभा और समितियें बनाकर प्रजा को स्वातन्त्र्य से अलंकृत करें । + इस आज्ञा को उस वैदिक समय में अवश्य ही माना जाता होगा । वेद तो राजा को सभापति के नाम से भी × पुकारते हैं जिस से

× सभाचमा समितिश्चावतां प्रजापते दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मांस शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ।
विद्मते सभेनाम नरिष्ठा नाम वा असि ॥.........
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञान मादद्दे ॥

+ राजानः सत्य समिती रियानः । ऋ० ९ मण्डल । ९२ । ६ ॥

* सविशोऽनुव्यचलत् । तं सभाच्च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलत् ॥ अथर्व । १५ । ९ २ ॥

+ त्रीणि राजाना विद थे पुरूणि परिविश्वानि भूषथः सदांसि । ऋ० । मं० ३ । सू० ३८ ॥

× नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च ॥ यजु० । १६ । २४ ॥

पता लगता है कि वेद भगवान् की सम्मति में कोई भी राजा सभा से बिना कार्य नहीं कर सकता है । और वास्तव में शासन करने वाली संस्था सभा ही है राजा तो उसका सभापति मात्र है । *

हमारा विश्वास है कि जो आर्य लोग वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मान कर सन्मान से उनका अध्ययन करते थे वे अवश्य उन की इन आज्ञाओं का भी पालन करते थे ।

ऐतिहासिक साक्षियां

अकेला राजा राज्य के भार के उठाने में सर्वथा अशक्त है इस लिये उसे राज कार्य में सहायता करने तथा उसे नियन्त्रण में रखने के लिये सभाओं की आवश्यक्ता है इस बातका प्रायः सभी नीतिकारों ने उल्लेख किया है । मनु महाराज कहते हैं कि बिना सहायता के कोई पुरुष छोटे से छोटा कार्य भी नहीं कर सकता तो राज्य के समान बड़े भारी चक्र को एक पुरुष कैसे चला सकता है + ठीक इसी मनु वाक्य का उल्लेख शुक्राचार्य

---

* वेद में राजा प्रजाओं के प्रति कहता है आवश्चित्तमावो व्रत मावोऽहं समिति ददे ॥ ऋ० ।

अर्थात् हे प्रजा के पुरुषों में तुम्हें समिति या राजपरिषत् देता हूं उस में जो कुछ तुम चाहोगे उसी के अनुसार मैं सोचूंगा और कर्म करूंगा । क्या इससे बढ़कर और कोई प्रमाण हो सकता है कि राजाओं की शक्ति सभाओं द्वारा बिल्कुल सीमित कर दी गई थी ।

+ अपियत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्नुराज्यं महोदयम् ॥ ७ । ५५ । म० ।

करते हैं कि छोटे से छोटा काम भी अकेले पुरुष से नहीं हो सकता तो बड़ा भारी राज्य का संचालन एक पुरुष से कैसे हो सकता है। * कौटिल्य भी अपने अर्थशास्त्र में इस विषय पर विचार करता हुआ बहुत से आचार्यों की सम्मतियां दिखाता हैं। जिस में विशालाक्ष की सम्मति है कि अकेले मनुष्य से किया हुआ कोई भी विचार सम्पूर्ण नहीं हो सकता और राजा को तो प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार की बातों से परिणाम निकालने होते हैं अतः उस के लिये दूसरों की सलाह लेना अत्यन्त आवश्यक है। अन्त में चाणक्य निश्चय करता है कि कोई भी राजा राज्य चक्र को अन्यों की सहायता के बिना अकेला नहीं चला सकता। +

मन्त्रिमण्डलः— कितने मन्त्री हों इसकी कोई निश्चित संख्या नहीं थी। बृहस्पति कहता है कि १६ मन्त्री हों, उशना कहता है कि २० हों, चाणक्य कहता है कि इन की कोई संख्या नहीं मन्त्री अवस्थानुसार घटाये बढ़ाये जा सकते हैं। मन्त्रियों की कितनी ही संख्या होती हो पर यह निश्चय है कि यह सभा बड़ी प्रवल सभा थी। राजा इस सभा के बिना पूछे कुछ भी काम नहीं कर सकता था। * चाणक्य, अर्थशास्त्र में कहता है कि राजा को ऐसा

---

* यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
पुरुषेणासहायेन किन्तुराज्यं महोदयम्॥ २ अ०।

\+ मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्तचाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥

* अपनी साक्षी में हम, हम जर्मनी के प्रसिद्ध।
राजनीति विशारद ब्लंशली की॥
एक साक्षी देना उचित समझते हैं।
,,He could take no impontant step without first consulting a council of conscience composed of Brahamans (347 Page) " ब्लंशली (Theory of State)

ही करना चाहिये जैसा कि मन्त्रिमण्डल सभा में निश्चय करे। साथ ही चाणक्य कहता है कि राजा को हर एक की सम्मति सुननी चाहिये। किसी की भी सम्मति का तिरस्कार नहीं करना चाहिये और अन्त में वह कहता है कि "यथा भूयिष्ठा ब्रूयु स्तथा कुर्यात्" कि जैसी बहु सम्मति कहे राजा वैसे करे। अग्नि पुराण भी राजा को उपदेश देता है कि "नैकस्य राजा श्रद्दध्या च्छ्रद्दध्याद्‌बहुवाक्यतः" कि राजा एक या थोड़ों की सम्मति पर कभी कार्य न करे जो बहुसम्मति हो उसी के अनुसार कार्य करे।

यह हमें निश्चय है कि ये सभासद् सारे देश के योग्य चुने हुए सज्जन हुआ करते थे। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि इस सभा के सभासद् ऐसे हों जो वेदादि विद्याओं से युक्त हों, धर्म के जानने वाले हों—सत्यवादी हों और सब से बढ़कर शत्रु और मित्र में एक समान वर्त्ताव करने वाले हों। + कात्यायन कहते हैं कि इस सभा के सभासद् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों में से ऐसे पुरुष चुने जाने चाहियें जो कभी भय न खाने वाले हों बुद्धिमान् हों कुलीन हों और धर्म-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र दोनों के पारंगत हों। ÷

यदि ऐसे पुरुष चुने जाते थे तो चाहे उनको साधारण प्रजा का प्रतिनिधि नहीं कहा जाता था परन्तु वास्तव में वे प्रतिनिधियों का काम

+ श्रुताध्ययनसम्पन्नाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः।
राज्ञः सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः॥ १। २

÷ स तु सभ्यैः स्थिरै युक्तः प्राज्ञैर्मौलै द्विजोत्तमैः।
धर्मशास्त्रार्थकुशलै रर्थशास्त्रविशारदैः॥ कात्यायन।

करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में ऐसी राज्य पद्धति थी जिस के द्वारा उत्तम से उत्तम योग्य पुरुष ही राज्य के चक्र को चलासके। न केवल हमारे ही शास्त्र इस की साक्षी देते हैं किन्तु विदेशी यात्री जो यहां आते थे वे भी यही लिखते हैं कि भारत में योग्य से योग्य पुरुषों पर शासन का भार डाला जाता है। देखिये ईसा से ३०० वर्ष पहले आने वाला यूनानी यात्री मैगस्थनीज़ लिखता है कि इस देश में जो योग्य से योग्य तथा धनी पुरुष हैं वे ही प्रबन्ध और न्याय का काम करते हैं तथा ऐसे योग्यतम पुरुष ही राज सभा में बैठते हैं। + यूनान का प्रसिद्ध लेखक एरियन भी लिखता है कि " His class is distinguished by Superior wisdom and justice" अर्थात् ये लोग जो राज सभा के सभासद् होते हैं वे बड़े बुद्धिमान् और न्याय-शील होते हैं"। इन विदेशियों की सम्मति से पता लगता है कि वास्तव में ये सभासद् प्रजा के प्रतिनिधियों का ही काम देते थे।

परन्तु यहां कहा जा सकता है कि केवल ब्राह्मणों में से ही इनको चुना जाता था अन्य वर्ण वालों में से कोई भी इस बड़ी राज सभा में नहीं जा सकता था परन्तु यह ठीक नहीं है। सर्व वर्णों के प्रतिनिधि इस में रखे जाते थे। इस के लिये अनेक प्रमाण हैं।

+. the noblest and richest manage public affairs, administer justice, and sit in council with the king."

महाभारत में व्यास भगवान् कहते हैं कि इस मन्त्रीमण्डल में चार स्नातक विद्वान् ब्राह्मण हों, अठारह वीर क्षत्रिय हों, धनधान्य से सम्पन्न वैश्य २१ हों, शूद्र तीन हों, और—एक वृद्ध अनुभवी सूत हो। इस प्रकार इस सभा के चालीस सभासद् हों। पाठक गण क्या दूसरे शब्दों में यह नहीं कहा जा सकता कि ४ ब्राह्मणों के प्रतिनिधि हों। १८ क्षत्रियों के, २१ वैश्यों के, तीन शूद्रों के, और एक सूतों का प्रतिनिधि हो। इस प्रकार यह सभा एक प्रतिनिधि—राजसभा का ही काम देती थी। प्रतिनिधि का शब्द इस लिये व्यवहार में नहीं लाया जाता था कि उस समय आजकल की न्याईं हर एक श्रेणी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये दूसरे के स्वार्थ को कुचलती नहीं थी। जो राजसभा में जाकर बैठते थे वे अपने ही वर्ण और अपनी ही श्रेणी की चिन्ता नहीं करते थे परन्तु समान भाव से दूसरे वर्णों और दूसरी श्रेणियों की भी उतनी ही चिन्ता करते थे। इस लिये दूसरे वर्ण और श्रेणी वालों को इस बात की चिन्ता ही नहीं होती थी कि वे अपने प्रतिनिधि भेजें। तो भी यह निश्चय है कि सभी वर्णों से चुने हुए योग्य पुरुष इस सभा में बैठते थे।

अग्नि पुराण राजाभिषेक विधि का वर्णन करता हुआ - जहां अन्यों से राजा का * अभिषेक कराता है वहां मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से-

---

* वक्ष्यामि यथामात्या न्यादृशांश्च करिष्यसि।
चतुरो ब्राह्मणा न्वैद्यान्प्रगल्भान्स्नातान् शुचीन्॥
क्षत्रियान् दशचाष्टौ च बलिनः शस्त्रपाणिनः।
वैश्यान्वित्तेन सम्पन्नान् एक विंशति संख्यया
त्रींश्च शूद्रान्विनीतांश्च शुचीत्कर्मणि पूर्वके
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमन सूयकम्॥ ८५ अ०॥ शान्ति॥

भी उसका अभिषेक करवाता है। पुराण कहता है कि जो ब्राह्मण मन्त्री हो, वह घृत से भरे हुए सुवर्ण के घट से राजा का अभिषेक करे। जो क्षत्रिय मन्त्री हो, वह दूध से युक्त चान्दी से बने हुए घडे से उसका अभिषेक करें। तथा वैश्य मन्त्री दही से भरे हुए ताम्र निर्मित घडे से उसका अभिषेक करे और जो शूद्र मन्त्री हो वह जल पूर्ण मट्टी से बने हुए घडे से उसका अभिषेक करे। * इन वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मन्त्री मण्डल में सभी वर्णों के पुरुषों के प्रतिनिधि बैठा करते थे तथा सभी वर्णों के प्रतिनिधियों से राजा को राज तिलक दिलाया जाता था।

कात्यायन की सम्मति है कि इस सभा में कुलीन और सदाचारी—अनुभवी वैश्यों का रखना अत्यन्त आवश्यक है। × इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सभा के सभासद् निष्पक्ष दृष्टि से सभी वर्णों में से योग्य से योग्य चुने हुए व्यक्ति होते थे। प्राचीन विद्वानों का यह सिद्धान्त था कि योग्यतम व्यक्तियों का ही शासन करने का अधिकार है। उनका तो विश्वास था कि यदि राजा के सहायक मूर्ख सहस्रों और लक्षों भी हो तो वे राजा की सहायता नहीं कर सकते जितना कि वेदादि विद्याओं का जानने वाला बुद्धिमान् बलवान् तथा निपुण मन्त्री

---

* अभिषिञ्चे दमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः
पूर्वतो हेम कुम्भेन घृत पूर्णेन ब्राह्मणः
रुप्यकुम्भेन याम्येच क्षीर पूर्णेन क्षत्रियः
दध्नाच ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगोनत्र
मृण्मयेन जलेनोदक् शूद्रामात्यो ऽभिषेचयेत् ॥ २१६ अध्याय।

× कुल शीलवयोवृत्त वित्तवद्भिरमत्सरैः
वणिग्भिः स्यात्कतिपयैः कुलभूतै रधिष्ठितम् ॥ कात्य स्मृति ॥

अकेला ही कर सकता है । + योग्यतम व्यक्तियों को चुनने का जो आजकल उपाय है वह उन दिनों नहीं था परन्तु कोई भी उपाय काम में लाया जाता हो, यह निश्चय है कि राज्य कार्य के लिये योग्यतम व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाता था ।

हमने ऊपर देखा है कि ब्राह्मणों के साथ कोई विशेष पक्षपात नहीं था । सभा के सभासद् चारों वर्णों में से ही चुने जाते थे परन्तु इन सब से बढ़ कर इसका एक और प्रमाण है । साधारणतः इस राज सभा का सभापति राजा ही होता था परन्तु उसकी अनुपस्थिति में यह सभापति का पद किसी दूसरे सज्जन को सौंपा जाता था । इस को प्रतिनिधि कह कर पुकारा जाता था । यह कोई निश्चित नहीं था कि वह ब्राह्मण ही हो, क्षत्रिय और वैश्य भी प्रतिनिधि बनकर राजा के आसन को सुशोभित कर सकते थे । देखिये याज्ञवल्क्य कहते हैं कि राजा किसी संयमी धर्मिष्ठ क्षत्रिय और वैश्य को ही प्रतिनिधि बना सकता है । * इस प्रकार राज्य का सब से ऊंचा पद भी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सभी द्विजमात्र के लिये खुला था ।

अस्तु उपर्युक्त मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या भिन्न २ लेखकों ने भिन्न २ दी है । शुक्राचार्य ने केवल १० की ही संख्या रखी है

\+ सहस्राण्यपि मूर्खाणां यं ह्युपास्ते महीपतिः ।
अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्ष विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं, श्रियम् ॥ रामातो० सर ३१ ॥

* ब्राह्मणो यत्र न स्यात्तु क्षत्रियं तत्र योजयेत् ।
वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञम् ॥

तथा उन दसों में से प्रत्येक को एक एक राजकीय विभाग का मुखिया बनाया है। प्रथम पुरोहित है जो धर्म के विभाग का मुखिया कहा गया है उसका काम राजा को धार्मिक विषयों में सलाह देने का था। दूसरा प्रतिनिधि है, यह राजा के प्रतिनिधि का काम करता था। तृतीय प्रधान है, यह प्रधान मन्त्री का काम करता था प्रत्येक विषय में राजा का सलाहकार था। चतुर्थ सचिव कहाता था, यह युद्ध विभाग या सेना विभाग का मन्त्री था। पञ्चम मन्त्री नाम से पुकारा जाता था यह बाह्य सचिव का काम करता था अर्थात् विदेशी राष्ट्रों के विषय में राजा को सलाह देता था। छटा सदस्य पण्डित नाम से बुलाया जाता था यह शिक्षा विभाग का मुखिया था तथा राजा को इसी विषय में सलाह देता था। सातवां प्राड्विवाक कहाता था यह राज नियम वाले विभाग का मन्त्री था। यह न्याय विभाग का काम करता था राजा को इस विषय में सलाह देता था। आठवां अमात्य कहाता था तथा कृषि विभाग का मुखिया था। नौवां सुमन्त्र नाम से प्रसिद्ध था यह अर्थ विभाग या धन विभाग के मन्त्री का काम करता था। दसवां दूत नाम से बुलाया जाता था यह राजा की ओर से दूसरे राष्ट्रों में आने जाने का काम करता था। + इन दसों में से प्रत्येक की सहायता के लिये दो दो और सहायक मन्त्री होते थे। इस प्रकार राजा की सहायता के लिये योग्यतम पुरुषों का एक मन्त्री मण्डल बनाया जाता था। इस राजसभा का बड़ा भारी बल था। शुक्राचार्य कहते हैं कि राजा इस मन्त्रीमण्डल के मत पर ही चले तथा

\+ पुरोधा च प्रतिनिधिः प्रधानः सचिव स्तथा।
मन्त्री च प्राड्विवाक श्च पण्डितश्च सुमन्त्रकः॥
अमात्यो दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो दश।

"स्वमते न कदाचन" अपने मत पर कभी भी हठ न करे, क्योंकि जो राजा इस राजसभा की सम्मति पर चलता है उसी का राज्य स्थिर रहता है, जो इन की सम्मति को नहीं सुनता उस को राज्य से हाथ धोना पड़ता है। ×

इस के अतिरिक्त राजा जो कोई भी आज्ञा देता था वह अपने नाम से नहीं देता था पर King in council के नाम से ही दे सकता था। देखिये शुक्राचार्य कितना स्पष्ट लिखते हैं कि जो आज्ञा दी जाय उस पर राजा पहले अपना कोई चिन्ह लिखे जिस से पता लगे कि यह उसकी ओर से आज्ञा दी गई है फिर वह आज्ञा पत्र मन्त्री, प्राड्विवाक, पण्डित, और दूत के पास जाय और वे क्रमशः उस पर विचार करें और सहमत हों तो उस पर लिखदें कि "यह हमारे मतानुकूल है"। फिर वह आज्ञा पत्र अमात्य के पास जाय और वह सहमत हो तो उसपर लिख दे कि "यह ठीक लिखा गया है" फिर वह सुमन्त्र नामक मन्त्री के पास जाय और वह भी सहतम हो तो लिख दे कि "यह ठीक विचार कर लिखा है" फिर वह प्रतिनिधि के पास जाय और उसे ठीक प्रतीत हो तो उस पर लिखदे कि "यह स्वीकार करने के योग्य है"। फिर वह पुरोहित को पहुंचाया जाय और उसे वह स्वीकार हो तो वह भी उस पर लिखदे कि "मेरी भी यही सम्मति है"। इस प्रकार जब उसको

× विना प्रकृति सम्मन्त्रा द्राज्य नाशो भवेन्मम ॥
यह भी द्रष्टव्य है कि ये दस ब्राह्मण न मिलें तो कहा है।
अभावे क्षत्रिया योज्या स्तदभावे तथोरुजाः ॥ २ । ११६ ॥

सब मन्त्री स्वीकृति के हस्ताक्षर करदें फिर यह आज्ञा पत्र राजा के पास आये और राजा यह लिखकर कि "यह स्वीकृत हो चुका है" अपनी मोहर लगादे। * इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि जब तक किसी पत्र पर सारी कौन्सिल के सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं होते थे वह नहीं माना जाता था।

प्रमथनाथ बैनर्जी अपनी पुस्तक में सीलोन के कुछ प्राचीन लेखों का उद्धरण देते हैं जिनके देखने से भी यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि लंका में भी आज्ञा देने की यही रीति प्रचलित थी। उनमें लिखा है कि "अमुक २ लौर्ड जो राज सभा में बैठते हैं और जो सब राजा के साथ सहमत हो गये हैं उन्हों ने ये नियम बनाये हैं" किसी पत्र की स्वीकृति भी इसी प्रकार सारी कौन्सिल करती थी। एक लेख में लिखा है कि "यह सारे राज्य के अफसर (यहां सब सभासदों के नाम दे दिये हैं) सहमत हैं और इस पत्र को स्वीकृत करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह राज सभा राजा के निमन्त्रण

---

* राजा स्वलेख्यचिह्नं तु यथाभिलषितं तथा।
लेखानुपूर्वं कुर्याद्धि दृष्ट्वा लेख्यं विचार्य च॥
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च पण्डितो दूतसंज्ञकः।
स्वाविरुद्धं लेख्यमिदं लिखेयुः प्रथमं त्विमे॥
अमात्यः साधुलिखनमस्त्येतत् प्राग्लिखेदयम्।
सम्यग्विचारितमिति सुमन्त्रो विलिखेत्ततः॥
प्रतिनिधिः— अंगीकर्तुं योग्यम्। पुरोहितः = स्वाभिमतम्।
अंगीकृतमिति लिखेन्मुद्रयेच्च ततो नृपः॥ २। २६० से
६५ तक

के लिये पर्याप्त थी। इनका काम था कि यदि राजा अन्याय मार्ग में जा रहा है तो उसे रोकें। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यदि राजा मनमाना काम करने लगे तो सभासदों का कर्तव्य है कि उसे रोकें यदि वे नहीं रोकते तो वे उस पाप के भागी होंगे। इस लिये उनका कर्तव्य है कि वे राजा को बतायें कि यह मार्ग न्याय्य है और वह अन्याय्य। मनु भी इन सभासदों को बड़े प्रबल शब्दों में सावधान करता हुआ कहता है कि जहां इन सभासदों के देखते २ धर्म अधर्म से और सत्य असत्य से दबाया जाता है वहां ये सभासद् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं +। शुक्राचार्य मनु से भी बढ़ गये हैं और लिखते हैं कि यदि राजा अधार्मिक हो जाय और अन्याय करने लगे तो सभासदों को उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये यदि उपेक्षा करेंगे तो वे भी राजा के ही साथ अधोमुख हो कर नरक में गिरेंगे। तथा शुक्राचार्य स्पष्ट कहते हैं कि जिन मन्त्रियों से राजा नहीं डरता वे मन्त्री ही नहीं वे तो सुसज्जित स्त्रियों की तरह हैं। इन वाक्यों से तो पता लगता है कि मन्त्रियों का मुख्य कर्तव्य राजा के स्वेच्छाचार को रोकना ही था।

सम्भव है यहां कइयों को यह संशय हो कि राजा की इच्छा के विपरीत मंत्री लोग कुछ नहीं कर सकते थे किन्तु यह ठीक

अन्यायेनापि तं यान्तं येऽनुयान्ति सभासदः।
ते पिस्तेद्भागिनस्तस्या द्बोधनीयः स तैर्नृपः॥

\+ यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥ ८। १४॥

× अधर्मतः प्रवृत्तं तन्नोपेक्षेरन्सभासदः।
उपेक्ष्यमाणाः सनृपाः नरकं यान्त्यधोमुखाः॥ ४। ३९०॥

नहीं। शुक्राचार्य कहते हैं कि जिस कार्य के करने में राजा का अहित भी होता हो परन्तु प्रजा की भलाई होती हो तो प्रतिनिधि को चाहिये कि वह उस कार्य को अवश्य करे *। दूसरे स्थान पर शुक्राचार्य यह भी कहते हैं कि यदि किसी कार्य के करने में राजा का हित होता हो किन्तु प्रजा की हानि हो तो वह कार्य मंत्री को कदापि न करना चाहिये +। इस से स्पष्ट है कि मंत्री लोग प्रजा के हिताहित को राजा के हिताहित से अधिक ध्यान में रखते थे। कभी २ तो वे राजा को राष्ट्र के लिये अत्यन्त हानिकारी समझ कर उसे सिंहासन से भी उतारने का अधिकार रखते थे।

चाणक्य अपने अर्थशास्त्र में लिखता है कि यदि राजा अत्यन्त अधार्मिक होजाय तो पुरोहित मंत्रियों को प्रेरणा करता है कि राजा अधार्मिक है अतः इस के लिये कुछ करना चाहिये। तदनन्तर मंत्री मिल कर विचार करते हैं कि चूंकि राजा अन्याय मार्गगामी हो गया है अतः "साधु धार्मिकमन्यं प्रतिपादयामः" अर्थात् किसी अन्य साधु और धार्मिक को उस के स्थान पर राजा बनाते हैं। जिस से स्पष्ट है कि यह राजसभा दुष्ट राजा को हटा भी सकती थी।

प्रत्येक ऐतिहासिक जानता है कि इसी राजसभा ने ही हर्षवर्धन को सिंहासन पर बिठाया था। कान्यकुब्ज के राजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु पर उसका ज्येष्ठपुत्र राज्यवर्धन सिंहासन पर बैठा किंतु बंगाल के राजा शशांक (नरेन्द्र गुप्त) ने उसे युद्ध में मारडाला तो उस

---

* अहितं चापि यत्कार्यं सद्यः कर्तुं यदौचितम्।
अकर्तुं यद्धितमपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा॥

\+ हितं राज्ञश्चाहितं लोकानां तन्नकारयेत्॥

समय सिंहासन राज शून्य हो गया। यह देख कर उस के महा-मंत्री ने यह मंत्रिसभा बुलाई और उस में उसने कहा कि "क्योंकि सिंहासन राजा से शून्य है अतः कोई राजा बनाया जाना चाहिये और चूंकि हर्षवर्धन राजकुल का है लोग उस में विश्वास करेंगे इस लिये मैं प्रस्ताव करता हूं कि वह राजसिंहासन ग्रहण करे। आप में से जो कुछ विचार प्रकट करना चाहें वे अपना २ विचार प्रगट करें" यह कहकर वह बैठ गया और दीर्घकाल के विचार पश्चात् फिर उस ने खड़े हो कर हर्षवर्धन की ओर मुख कर के कहा कि सब लोगों की सम्मति से तथा लोगों के तुम्हारे लिये बनाये गीतों से पता लगता है कि सब तुम्हारे गुणों को मानते हैं इस लिये तुम उठो और पृथिवी का राज्य ग्रहण करो।

इसी प्रकार हम जानते हैं कि लंका में इसी राज सभा ने ही लीलावती को महाराणी बनाया था और पीछे से इसी राजसभा ने असन्तुष्ट हो कर उस को राज सिंहासन से उतारा था।

शुक्राचार्य ने इस सभा के सभासदों को ही भिन्न २ राजकीय विभागों का मुखिया भी बनाया है परन्तु सदा ऐसा नहीं रहा है। यह राजसभा केवल राजा की विचार सभा ही रही है तथा सारे पदाधि-कारियों का नियत करना इसी सभा के सभासदों के हाथ में रहा है। भिन्न २ विभागों के मुखिया लोगों का नियत करना भी इन्हीं के हाथों में था। यूनान का लेखक एरियन भारत की भिन्न २ श्रेणियों का वर्णन करता हुआ लिखता है कि इन छः श्रेणियों के अतिरिक्त एक सातवीं श्रेणी है। इस श्रेणी में वे लोग आते हैं जो राजसभा में बैठते हैं और राजा की सहायता करते हैं यह

श्रेणी छोटी है परन्तु बुद्धिमत्ता और न्यायशीलता के लिये बड़ी प्रसिद्ध है। येही राजसभा के सभ्य भिन्न २ प्रान्तों के शासकों उनके सहायकों तथा कोश, सेना, जहाज़ी बेड़ा तथा कृषि आदि के भिन्न२ विभागों के मुखिया तथा निरीक्षकों को नियत करते हैं। इस से पता लगता है कि सभी बड़े बड़े पदाधिकारियों का नियत करना इन चुने हुए बुद्धिमान् दूरदर्शी लोगों के हाथों में था।

ये राजसभा के सदस्य जहां राजा के सामने उत्तरदाता थे वहां प्रजा के सामने भी उत्तरदाता थे। इनको प्रजा की सहमति या असहमति का बहुत विचार होता था इस लिये ये राजा के खिलौने मात्र नहीं थे। ह्वेनसांग जो चीन से भारत में आया था उसने इसी प्रकरण में एक घटना लिखी है। वह कहता है कि श्रावस्ती का राजा विक्रमादित्य बड़ा दानी था उसने अर्थसचिव को आज्ञा दी कि प्रति दिन ५ लाख सोने के सिक्कों को बांटा जाय। यह सुन कर मन्त्री डर गया और उसने कहा कि राजन्! इस प्रकार राजकोश शीघ्र ही खाली होजायगा और तब खजाने को भरने के लिये नये २ कर लगाने पड़ेंगे जिस से प्रजा को पीछे से दुःख और क्लेश उठाना पड़ेगा। इस में कोई सन्देह नहीं कि आप दानी कहलायेंगे परन्तु इस तरह धन लुटाने से प्रजा में तुम्हारे मन्त्री का मान नष्ट हो जायगा ×। अतः इतना धन लुटाना ठीक नहीं।

इसी प्रकार महाराज अशोक ने भी अपने अर्थसचिव से सारा धन दान करने के लिये कहा था और उस के मन्त्री ने भी ऐसा ही

× Beal के Budhist records में से प्रमथनाथ बैनर्जी ने अपनी पुस्तक में यह कथा लिखी हैं।

उत्तर दिया था। जिस से पता लगता है कि मन्त्री लोग भी अपना उत्तरदातृत्व समझते थे। यदि मन्त्री लोग अन्याय करते थे तो प्रजा उनको डरा सकती थी। रामायण में रामचन्द्र जी भरत से पूछते हैं कि क्या तुम्हारे मंत्रियों से उद्विग्न हुई २ प्रजायें तुम्हारे मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करती? + यदि सब कामों के लिये राजा उत्तरदाता था और मन्त्री उत्तरदाता नहीं थे तो प्रजा राजा का तिरस्कार करती, मन्त्रियों का तिरस्कार करना रामचन्द्र जी ने क्यों पूछा?

यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि यदि ये राजसभा के सभासद् लोग ही राजनियम के विपरीत मन माना करते थे तो इनको भी न्यायालय के सामने खड़ा होना पड़ता था याज्ञवल्क्य तो लिखते हैं कि यदि राग लोभ या भय के वश होकर ये राजसभा के सभ्य राजनियम के विरुद्ध कार्य करते हैं तो न्यायालय को चाहिये कि वह इनको उसी अपराध में दूसरे साधारण लोगों से दुगुना दण्ड दे *। योग्य टीकाकार इस वाक्य की व्याख्या में इस के लिये युक्ति भी देता है वह कहता है कि अन्य लोग यदि कोई अपराध करते हैं तो उन्हें तो इसी बात का दण्ड मिलता है कि उन्होंने स्मृति की आज्ञा का उल्लंघन किया है परन्तु यदि कोई राजसभा का सभ्य अपराध करता है तो जहां वह स्मृति का उल्लंघन करता है वहां राजा की आज्ञा का भी भंग करता है।

\+ कच्चिदुग्रेण दण्डेन भृशमुद्वेजिताः प्रजाः।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुतः। १००। २७ अयो० ॥

* रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः।
सभ्याः पृथक् २ दण्ड्या विवादाद् द्विगुणं दमम् ॥ १ । ४ ॥

उसे राजा ने अपराधों के दमन के लिये नियुक्त किया है यदि वह स्वयं अपराध करता है तो और अपराधियों की अपेक्षा अधिक पाप करता है। इस लिये उसे साधारण दोषियों की अपेक्षा अधिक दण्ड मिलना चाहिये। अग्नि पुराण तो इस विषय में बहुत अधिक कठोर दण्ड देने के लिये कहता है। वह कहता है कि यदि अमात्य या प्राड्विवाक जैसा बड़ा अधिकारी भी राजकीय प्रबन्ध में गड़ बड़ करता है तो उसका सब कुछ लेकर उसे देश निर्वासन का दण्ड देना चाहिये +। इस से प्रतीत होता है कि ये लोग स्वयं भी उच्छृंखल नहीं हो सकते थे।

यदि यह कहा जाय कि प्राचीन भारत में पुरोहित का अधिकार राष्ट्र में सर्वोपरि था तो इस में कोई अत्युक्ति न होगी। और यदि उसे सारी प्रजा का प्रतिनिधि कहा जाय तो इस में भी कुछ असत्य न होगा। प्राचीन इतिहासों के अवलोकन करने वाले जानते हैं कि सारे राष्ट्र में जो सब से बड़ा महान् आत्मा होता था तथा सारी प्रजा जिस के सामने झुकने में अपना गौरव समझती थी वही राज्य का पुरोहित बनाया जाता था। प्राचीन ब्राह्मणपुस्तकों तथा अरण्यकों में अनेक पुरोहितों के काम दिये हुए हैं जो बड़े तपस्वी त्यागी परोपकारी महात्मा थे। ऐसा कौन होगा जिसने दशरथ तथा रामचन्द्र जी के पुरोहित महात्मर्षि वसिष्ठ का नाम न सुना हो और उनका त्यागमय जीवन देख कर मन में अत्यन्त आनन्द अनुभव न किया हो। यहां पर हम प्रकरणानुसार पुरोहित के विषय

\+ अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्यात्कार्यमन्यथा।
तस्य सर्वस्व मादाय तं राजा विप्रवासयेत्॥ १२३ अ०॥

में यही दिखाना चाहते हैं कि राजा को नियन्त्रण में रखने का काम जहां राजसभा करती थी वहां बहुत सा नियन्त्रण का काम पुरोहित के हाथों में भी था।

* पुरोहित राज्य का मुख्य अंग समझा जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि जो राजा बिना पुरोहित के होता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है और जिस राजा के राष्ट्र की रक्षा करने वाला विद्वान् पुरोहित होता है उस की सब प्रजायें उससे सन्तुष्ट रहती हैं। राजा को राजतिलक देना पुरोहित ही का काम था। चाणक्य अपने अर्थशास्त्र में लिखता है कि राजा को पुरोहित से ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसा शिष्य आचार्य से, पिता पुत्र से, तथा भृत्य स्वामी से करता है। इससे प्रतीत होता है कि उस विद्वान् निष्पक्षपाती पुरोहित की आज्ञा राजा को अवश्य माननी पड़ती थी।

राजा की अनुपस्थिति में भी सारा राज्यचक्र पुरोहित को चलाना होता था जैसा कि रामायण में दशरथ की मृत्यु पर सारा कार्य महर्षि वसिष्ठ ही चलाते रहे।

पाठक वर्ग ! राज महल में जाकर महाराणी केकैयी को जिसको कटु शब्द कहने का किसी का भी साहस नहीं पड़ता था यह क-

---

* तस्मै विशः संजानते सम्मुखा।
एकमनसो यस्यैवं विद्वाचाणो राष्ट्रगोपः॥
पुरोहितः। ४० अ.। ३ ख। २५।
तस्मैविशः स्वयमेवानमन्त इति॥
राष्ट्राणि वै विशः राष्ट्राण्येवेनं।
तत्स्वयमुपनमन्ति॥

हना कि "**अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि! कुलपांसनि! वञ्चयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि**" पुरोहित ही का अधिकार था। पुरोहित को राजा का भी शासक कह कर पुकारा जाता था *। राजा को भी सिंहासन से उतारने का अधिकार पुरोहित को था। यदि प्रजा राजा से असन्तुष्ट होती थी तो पुरोहित राजा को राजसिंहासन से उतार सकता था। देखिए कितने स्पष्ट शब्दों में यह बात शुक्राचार्य कह रहे हैं कि यदि राजा अधार्मिक होकर नीतिविरुद्ध व्यवहारों से राष्ट्र का विप्लव करने लगे तो पुरोहित उसको राजसिंहासन से हटा कर मन्त्रिमण्डल की सम्मति लेकर उस कुल में उत्पन्न हुए किसी दूसरे गुणी धार्मिक सज्जन को राजसिंहासन पर बिठाये। प्राचीन समय में राजा को राजसिंहासन से हटाने का यही उपाय था कि प्रजा यदि राजा से असन्तुष्ट होती थी तो वह राज्य के पुरोहित को इस बात की सूचना देती थी। पुरोहित उस विषय को मन्त्रियों की राजसभा में प्रस्तुत करता था और वहां यदि वह बात स्वीकृत हो जाती थी तो राजा के स्थान पर किसी दूसरे उसी कुल में उत्पन्न हुए गुणी धार्मिक सज्जन को सिंहासन पर बिठाया जाता था। चाणक्य भी अर्थशास्त्र में ठीक इसी बात का उल्लेख करता है कि पुरोहित मन्त्रियों को प्रेरणा करे कि राजा अधार्मिक है इस को सिंहासन से उतार कर "**साधुधार्मिकमन्यं प्रतिपादयामः**" किसी इस के धार्मिक सज्जन को राज सिंहासन पर बिठाते हैं।

---

* **यान्मैत्रावरुणिः प्रशास्ति भगवानाम्नायपतेर्विधौ।**
शश्वद्येषु विशामनन्यविषयो रक्षाधिकारः स्थितः॥
॥ १ ॥ २५ महावीर ॥

यहां पर कहा जासकता है कि पुरोहित प्रजा के सामने अपने कामों के लिए उत्तरदाता नहीं था इस लिये यदि राजा अधार्मिक हो कर अन्याय करने लगता था तो वह उस की उपेक्षा करता था और इस प्रकार प्रजा दुखी रहती थी किन्तु यह ठीक नहीं प्रायः सभी प्राचीन नीतिकारों ने पुरोहित को अपने उत्तरदातृत्व के लिये बड़ा सावधान किया है। वे कहते हैं कि यदि राजा कोई अन्याय करता है तो जहां राजा स्वयं उस पाप का भागी होता है वहां पुरोहित को भी उस पाप का फल भोगना पड़ता है क्योंकि उस का कर्तव्य है कि वह राजा को उस पाप कर्म से रोके। चाणक्य अपनी नीति में लिखते हैं। कि राजा, जो पाप करता है वह पुरोहित को भी भुगतना पड़ता है। शंख लिखिताचार्य तो सूत्रग्रन्थ में पुरोहित को बहुत अधिक सावधान करते हैं। सुनिये उनके शब्द क्या हैं वे कहते हैं कि "यदि किसी अपराधी दण्डनीय पुरुष को राजा ने दण्ड नहीं दिया तो राजा एक रात तक और पुरोहित तीन रात तक उपवास रखे और यदि किसी निरपराधी निर्दोष पुरुष को राजा ने दण्ड दे दिया है तो राजा को तथा परोहित को तीन रात तक बरावर उपवास रखना चाहिये ×। पाठक वर्ग इस से यह तो स्पष्ट है ही कि राजा यदि पाप करता है तो पुरोहित उसका उत्तरदाता है परन्तु इस से यह भी पता लगता है कि प्राचीन नीतिकार राजा को भी दण्डनीय समझते थे। इस प्रकार हमने देखा कि राजसभा के

---

* राजाराष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः। चाणक्य नीती॥

× दण्डोत्सर्गे (दण्ड्यादण्डने) राजैकरात्र-
मुपवसेत् त्रिरात्रं पुरोहितः॥
कृच्छ्रमदण्ड्यदण्डने (अदण्ड्यदण्डने) पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा च।

अतिरिक्त पुरोहित भी राजा को प्रतिबन्ध में रखने के लिये बड़ा सहायक था।

राजा पर और प्रतिबन्ध

इन दोनों प्रतिबन्धों के अतिरिक्त राजा के ऊपर प्रजा के विद्वान् ब्राह्मणों की समाज का भी बड़ा भारी प्रतिबन्ध था। प्राचीन भारत का यह माना हुआ सिद्धान्त था कि राष्ट्र पर केवल राजा का ही अधिकार नहीं है किन्तु देश के विद्वान् ब्राह्मणों का भी उतना ही अधिकार है। देखिये कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा में लिखा है कि **"ब्रह्मणा च क्षत्रेण चोभयतो राष्ट्रं परिगृहीतं भवति"** ÷ अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों पर राष्ट्र की रक्षा का भार है। क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों की सहायता के बिना कुछ भी नहीं कर सकता।

हमारे प्राचीन लोग तो यहां तक मानते थे कि क्षत्रिय राजा सर्वथा देश के विद्वान् ब्राह्मणों के वश में हैं जिस प्रकार वे कहें राजा को उसी प्रकार वर्तना चाहिये। इस विषय में ऐतरेय ब्राह्मण के क्या ही सुन्दर शब्द हैं **"ब्रह्म एव तत्क्षत्रं वशमेति तद्यत्रवै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन्वीरो जायते"** × वह कहता है कि "क्षत्रियराजा देश के विद्वान् ब्राह्मणों के ही आधीन होता है तथा जिस राष्ट्र में क्षत्रिय राजा विद्वान् ब्राह्मणों के कथन के अनुसार चलता है वह राष्ट्र अत्यन्त समृद्धिशाली होता है तथा

÷ २ का० । ७ प्र० । १५ अनु० ॥

× ऐतरेय । ३७ अ० ।

उसी राष्ट्र में वीर लोग उत्पन्न होते हैं।" आज का बड़े से बड़ा प्रजातन्त्रवादी भी इस से अधिक सुन्दर शब्दों में प्रजातन्त्र शासन की प्रशंसा नहीं कर सकता प्रजातन्त्र शासन पर अपने विचार प्रकट करते हुए महर्षि व्यास लिखते हैं कि ताभ्यां सम्भूय कर्तव्यं प्रजानां परिपालनम्' * अर्थात् क्षत्रियराजा को चाहिये कि वह देश के विद्वान् ब्राह्मणों के साथ मिलकर ही प्रजाओं पर शासन करे। इन वाक्यों से अत्यन्त स्पष्ट होता है कि राजा को देश के विद्वान् ब्राह्मणों की सम्मति के अनुसार ही अवश्य काम करना पड़ता था।

प्रमथनाथ वैनर्जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि इन विद्वान् ब्राह्मणों की श्रेणी का, जिन पर अन्य लोगों की स्वाभाविक श्रद्धा थी राजा पर बड़ा भारी प्रभाव था ÷। वास्तव में इस कथन में बहुत अधिक सत्य है। मनु लिखते हैं "कि इस प्रकार तीनों वेदों के जानने वाले विद्वान् ब्राह्मणों को राजा पहले नमस्कार करे तथा जिस प्रकार राजकार्य के लिये वे सम्मति दें उसी प्रकार करे" +। मत्स्य पुराण में लिखा है "कि इन वेदविद् ब्राह्मणों से राजा विनय सीखे क्योंकि यदि राजा विनीत और नम्र होगा तो सारी पृथ्वी उस के वश में हो सकती है" ×। इस प्रकार के अनेक वाक्यों का उल्लेख किया जा सकता है जिन से पता लगता है कि राजा के लिये इन विद्वान् ब्राह्मणों की सम्मति लेना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था।

---

* ७४। १५ शान्तिपर्व

÷ ५० पृष्ठ

\+ ७, ३७

× २१५ अ०

कभी २ इतिहास के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि इन विद्वान् ब्राह्मणों की सम्मति जानने के लिये इनकी कोई नियम-पूर्वक राजसभा भी होती थी। हम जानते हैं कि दशरथ महाराज के समय भी इन विद्वान् ब्राह्मणों की एक सभा थी जिसके सभ्य मार्कण्डेय-मौद्गल्य वामदेव-कश्यप-कात्यायन-गौतम और जाबालि नाम के महानुभाव ब्राह्मण थे ÷। यह सभा मन्त्रिमण्डल से सर्वथा भिन्न ही थी क्योंकि मन्त्रियों के भी नाम हम जानते हैं जो कि इनसे सर्वथा पृथक् थे। तथा वहां रामायण में यह वाक्य आता है कि "एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्" ॐ कि जिससे स्पष्ट है कि ये ब्राह्मण मन्त्रियों से भिन्न थे। इस के अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि प्राचीन काल में विद्वानों की दो सभायें और हुआ करतीं थीं। एक का नाम दशावरा और दूसरी का नाम त्र्यवरा था।

नाना विद्याओं के जानने वाले दस विद्वान् दशावरा के सभ्य होते थे। तथा तीनों वेदों को पूर्ण तौर से जानने वाले तीन महानुभाव त्र्यवरा के सभासद् हुआ करते थे। इन सभाओं की सम्मति में बड़ा बल था। मनु कहते हैं कि धर्म विषय में जो ये सभायें निर्णय करें राजा उनका उल्लंघन न करे ×। इन सभाओं का ठीक २ इतिहास

÷ ६७ सर्ग अयोध्या।

ॐ ६८। १ भी द्रष्टव्य है।

× दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥ १२। ११० मनु॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा॥ १११॥ मनु॥
ऋग्वेद विद्यजुर्विच्च सामवेदविदेवच।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये। ११२॥ मनु॥

नहीं मिल सकता किन्तु यह निश्चय है कि जब ये होती होंगी राजा के ऊपर देश के विद्वानों का बड़ा भारी प्रतिबन्ध होता होगा ।

लोकसम्मति का प्रतिबन्ध

उपरोक्त तीन प्रतिबन्धों के अतिरिक्त राजा के ऊपर सर्वसाधारण **लोकसम्मति** का भी बड़ाभारी प्रतिबन्ध था । प्राचीन समय में राजाओं ने सर्वसाधारण लोकसम्मति के जानने के लिए भिन्न २ समयों में भिन्न २ प्रकार के प्रबन्ध किये हुए थे । यूनान का विद्वान् लेखक एरियन भारत की भिन्न २ श्रेणियों का उल्लेख करता हुआ लिखता है कि "इन पांच श्रेणियों के अतिरिक्त एक और छटी श्रेणी नियत है । भारत में जहां २ राजतन्त्र शासन है वहां ये लोग राजा को प्रजा की प्रत्येक प्रकार की सम्मति का पता देते रहते हैं तथा जहां २ प्रजातन्त्र शासन है वहां भी ये लोग प्रजातन्त्र राज्य के प्रधान को प्रजा की सब बातों की सूचना देते रहते हैं । ये लोग निरीक्षक कहलाते हैं ।" पाठक वर्ग! शायद आप समझे होंगे कि ये राज की ओर से नियत किये हुए निरीक्षक लोग राजा को मनमानी तथा झूठी सूचनायें पहुंचा देते होगें । परन्तु इस संशय के निवारण के लिये आप यदि एरियन की अगली पंक्तियां पढ़ें वह लिखता है कि "ये लोग कभी भी झूटी सूचना नहीं पहुंचाते हैं और वास्तव में किसी भी भारतवासी पर झूठ बोलने का अपराध नहीं लगाया गया है * ।" प्राचीन भारतीयों की सत्यता के विषय में एक विदेशी

---

* **एरियन लिखता है** mc crindle 212 Page.
6. Superintendents "They report every thing to the king where the peofle have a king, and to the magestrates where the people are self governed and it is against use and want for them to give in a false report but ineeel no Indian is accused of lying."

की यह सम्मति पढ़ कर कौन ऐसा हृदय होगा जो आनन्द से गद्गद न हो ज़ाय ।

उपरोक्त लेख से पता लगता है कि राजा लोग निरीक्षकों द्वारा प्रजा की सम्मति का पता लगाया करते थे । परन्तु बहुत समयों पर राजा लोग सर्वसाधारण लोगों की एक सभा भी बनाते थे ।

राज्य के नगरों में सर्वसाधारण लोग कई समूहों में बंटे हुए होते थे इन समूहों को **गण के** नाम से पुकारा जाता था (इस को हम " भारत में स्थानीय शासन" इस बिषय पर विचार करते हुए पृथक् अध्याय में स्पष्ट करेंगे) इन्हीं गणों के मुखिया लोगों को जिन को हम दूसरे शब्दों में प्रतिनिधि भी कह सकते हैं इकट्ठा कर के राजा सर्वसाधारण की सम्मति का पता लगाता था । रामायण के पढ़ने वाले जानते हैं कि जब दशरथ महाराज का देहान्त हो गया और रामचन्द्र जी के वन में चले जाने से सिंहासन राजशून्य हो गया तो वसिष्ठ महाराज राजसभा में आये और सुवर्ण से बनी कुरसी पर बैठ कर दूतों से कहने लगे कि तुम लोग शीघ्र जाओ और मन्त्रि सभा के सदस्यों, ब्राह्मणों, (ब्राह्मण सभा के सदस्यों) और गणों के मुखिया लोगों (प्रतिनिधियों को) शीघ्र बुलाकर लाओ क्योंकि अत्यन्त आवश्यक कार्य है । *

---

* ब्राह्मणान् क्षत्रियान् योधान् अमात्यान्-गणवल्लभान् ।
क्षिप्रमानयता व्यग्राः कृत्यमात्यायिकं हि नः ॥ ८२ । १२ । अयो० ।
तथा
पौरजानपदश्रेष्ठा नैगमाश्च गणैः सह ॥ १४ । ४० ॥
अमात्या बलमुख्याश्च मुख्या ये निगमस्य च । १५ । २ ॥
ब्राह्मणा बलमुख्याश्च नैगमाश्चागमान्तिवह ॥

इसी प्रकार जब दशरथ महाराज के राज सिंहासन को राम को देने का प्रस्ताव मन्त्रिसभा में स्वीकृत हो गया तो उन्होंने यह सर्वसाधारण सभा बुलाई और देश भर के नगरों में से सर्वसाधारण लोगों के मुखियाओं को उस सभा में बुलाया + । यह सभा कोई एक वार के लिए ही अकस्मात् नहीं बुलाई गई क्योंकि इस सभा का नाम भी रामायण में "परिषत्" करके लिखा है । अतः यह कोई स्थायी सभा थी क्योंकि अस्थायी सभा का नाम रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी । परिषत् शब्द का अर्थ भी यही है कि सब ओर से और नाना स्थानों से लोग जिस में आकर बैठें । तथा रामायण के पढ़ने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्रिसभा से यहां परिषद् सर्वथा एक भिन्न सभा थी :: ।

महाभारत में भी महर्षि व्यास कहते हैं कि "राजा को इन गणों के मुखिया लोगों की बात बड़े आदर से सुननी चाहिये क्योंकि राजा की लोकप्रियता इन्हीं के ऊपर निर्भर है" × । आगे वे ही लिखते हैं कि "इन गणों के मुखिया लोगों को एकत्रित होकर गणों की भलाई का विचार करना चाहिए" + । इस वाक्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कोई ऐसी सभा अवश्य थी जिस में गणों के मुखिया लोग (प्रतिनिधि

+ नाना नगर वास्तव्यान्पृथक् जानपदानपि ।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥ अयोध्या ।

:: ऊचुस्ते वचनमिदं निशम्य हृष्टाः सामात्याः सपरिषदो ।
वियातशोकाः ॥ ७६ । १७ । अयो ॥

× तस्मान्मानयितव्यास्ते गणमुख्याः प्रधानतः ।
लोकयात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव । १०७ अ० ।

+ गणमुख्यैस्तु सम्भूय कार्यं गणहितं मिथः ॥

लोग) एकत्रित होकर गणों के हित के लिये राजा को सम्मति देते थे।

सर्वसाधारण प्रजा की सम्मति जानने के लिये मनु भी राजा को प्रेरणा करते हैं। वे कहते हैं कि "राजा पहले सर्वसाधारण लोकसभा में जावे और वहां सब को प्रसन्न करे और इस सभा को विसर्जन करने के पश्चात् मन्त्रिसभा में प्रवेश करे" *। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि राजा को पहिले लोकसम्मति का जानना आवश्यक था।

इस प्रकार लोकसम्मति को जानने के लिए भिन्न २ समयों पर भिन्न २ उपाय तो राजा लोग ही करते थे परन्तु जिस प्रकार आज कल प्रत्येक सभ्य देश में देशवासियों को यह अधिकार है कि वे अपनी सभाओं और खुले बाजारों में शासन मण्डल की समालोचना करें उसी प्रकार प्राचीन भारत में लोगों का राज-विषयक समालोचना करने का पूर्ण अधिकार था। देखिए चाणक्य अपने अर्थशास्त्र में लिखता है कि "तीर्थों में सभाओं में और गणों के समूहों में लोग राजविषयक वाद विवाद करें अर्थात् यह राजा बड़ा गुणी और धार्मिक है अथवा यह राजा गुणों से रहित है और इसके समय में प्रजा को कठोर दण्ड तथा कठोर करों से बहुत सताया जाता है" +।

---

* तत्र स्थितः प्रजाः सर्वा प्रतिनन्द्य विसर्जयेत्।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः। ७। १४६॥

\+ सत्रिणो द्वन्द्विन स्तीर्थ सभा शाला यूग जन।
समवायेषु विवादं कुर्युः। सर्वगुण सम्पन्नश्चायं॥
राजा दृश्यते नचास्य काश्चिद्गुणो दृश्यते यः।
पौर जानपदान्दण्डकराभ्यां प्रपीडयति॥

रामायण में भी लिखा है कि जब दशरथ महाराज ने रामचन्द्र जी को युवराज बनाने का राजसभा में प्रस्ताव किया तो लोगों ने अनेक सभायें कर के राजा के प्रस्ताव की खूब प्रशंसा की ×। इसी प्रकार जब दशरथ के कथन से रामचन्द्र जी भूमण्डल के राज्य को लात मार सीता देवी के साथ बन को चलने को उद्यत हुए उस समय सारे नगर निवासी खुले बाजार दशरथ की क्रोध पूर्ण और कड़ी समालोचना कर रहे थे और अयोध्या भर के लोग राजा को निश्शंक होकर धिक्कार रहे थे ÷। स्वयं दशरथ ने कैकेयी से कहा था कि यदि राम बनको जायगा तो सारे लोग कुपित हो कर मुझे धिक्कारेंगे +। क्योंकि दशरथ समझते थे कि लोगों को राज-विषयक समालोचना का पूर्ण अधिकार है। दशरथ यहां तक कहते हैं कि हे! कैकेयी यदि राम बन को गया तो खुले बाज़ारों में लोग मुझे अनार्य कह कर ऐसा अपमान करेंगे जैसा सुरा पीने वाले ब्राह्मण का करते हैं। पाठक गण! राज विषयक समालोचना करने की ऐसी स्वतन्त्रता तो आज कल भी बहुत कम देशों में होगी। ×

× समेत्य संघशः सर्वे चत्वरेषु सभासु च।
कथयन्तो मिथस्तत्र प्रशशंसुर्जनाधिपम्॥

÷ तदस्यां घोर वसनायां नाथ वत्यामनाथवत्।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक् त्वां दशरथं त्विति॥ ३८। १॥
अयोध्यायां जनः सर्वः चुक्रोश जगतीपतिम्॥ ४१। १५॥

+ राघवेऽपि वनं प्राप्ते सर्वलोकस्य धिक्कृतम्।
मृत्यु रक्षमणीयं मां नयिष्यति यमक्षयम्॥ ८७॥
कृत्स्नं हि सर्वं कुपितं जगत्स्याद्दृष्ट्वैव रामं।
व्यसने निमग्नम्॥ १०२। १२ सर्ग॥

× अनार्य इति मामार्यो पुत्रविक्रायिकं ध्रुवम्।
धिक्करिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा॥ १२। ७८॥

महाभारत के पढ़ने वाले जानते हैं कि दुर्योधन की राजसभा में भीष्म, द्रोण, विदुर और सुबल के पुत्र ने निर्भय तथा निश्शंक होकर जो राजविषयक समालोचना की है वह बताती है कि उन दिनों भाषण तथा समालोचना की कितनी स्वतन्त्रता थी *। प्राचीन समय में यह भी विश्वास था कि जितना लोगों को राज-विषयक सामालोचना करने की स्वतन्त्रता होगी उतना राज्य सर्वप्रिय और स्थायी होगा। महाभारत में महाराज प्रल्हाद की कथा में लिखा है कि उनका राज्य पृथ्वी के बड़े भारी भाग पर था तथा सारी प्रजायें उन से अत्यन्त प्रसन्न थी। एक ब्राह्मण ने उनसे प्रश्न किया कि हे महाराज आपने इतना बड़ा राज्य कैसे प्राप्त किया है इस के उत्तर में महाराज क्या कहते हैं सुनिये।

"हे विप्र मैं राजा हूं यह मन में सोच कर अपनी प्रजा के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विजमात्र के प्रति कभी भी अभिमान नहीं दिखाता हूं। ये प्रजा के लोग राज्य विषयक जो नीति और नियम बताते हैं मैं उसी को मान कर काम में लाता हूं ये लोग निर्भय होकर बोलते और मेरी समालोचना करते हैं" +। इस से स्पष्ट है कि महाराज प्रह-

---

* उद्योगपर्व १४७ अ०।

\+ प्रल्हाद बोले—

नासुयामि द्विजा न्विप्र राजास्मीति कदाचन।
काव्यानि वदतां तेषां संयच्छामि वहामि च।
ते विश्रब्धाः प्रभाषन्ते संयच्छन्ति च मां सदा॥
शान्ति। १२४। ३५।

लाद लोकसम्मति की प्रधानता को ही अपनी राज्य की सर्वप्रियता और महत्ता का कारण मानते थे। इस संक्षिप्त आलोचना से स्पष्ट है कि लोक सम्मति का पता लगाना तथा उस के अनुसार चलना राजाओं के लिये आवश्यक समझा जाता था *।

---

* राज्य में रहने वाले ब्राह्मणों का राजा पर कितना बल होता था इस का एक चित्र महाभारत में मिलता है। जब युधिष्ठिर युद्ध के बाद सिंहासन पर बैठे उस समय एक ब्राह्मण उनके पास आता है और कहता है "राजन् सब द्विजों ने मुझे आपके पास प्रतिनिधि बनाकर भेजा है और कहला भेजा है कि तुमको धिक्कार है कि तुमने इतने भाइयों का खून बहा कर सिंहासनारोहण किया है। इस पर राजा को तथा राजभक्तों को यह हिम्मत नहीं थी कि वे इस को शान्त करा सकते सब की गर्दनें शर्म से झुकगईं और युधिष्ठिर बड़ी नम्रता से बोले हे ब्रह्मन् आप सब द्विजों से कहें कि वे मुझ दीन पर कृपा करें मुझे अपने भाइयों के मरने का बड़ा दुःख हो रहा है वे मुझे धिक्कार न दें। अस्तु पाठकों को मालूम हो सकता है कि उस समय द्विजों का एक प्रतिनिधि भरी सभा में सिंहासनासीन राजा को फटकार सकता था और किसी की हिम्मत नहीं थी कि उस को रोक सके। (आदिपर्व ३८। २६) उत्तर–युधि:३—

प्रसादन्तु भवन्तो मे प्रणतस्याभियाचतः।
प्रत्यासन्न व्यसनिनं न मां धिक्कर्तुमर्हथ।
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे स च राजा युधिष्ठिरः।
व्रीडिताः परयो द्विग्नास्तूष्णीमासन्विशांपते॥
इमे प्राहुः द्विजाः सर्वे समारोप्य वचो मयि।
धिक् भवन्तं भूपतिं ज्ञातिघा विनयस्तु वै। ३८। ३६॥

तृतीय परिच्छेद

प्रजा द्वारा राजा की नियुक्ति

विरोधियों की आशंका---आर्य्य जाति राजनैतिक दृष्टि से सदा ही पराधीन रही है उस ने स्वाधीनता की मधुर अमृतधारा का एक घूंट भी कभी नहीं पिया। आर्य जाति को राजनैतिक स्वाधीनता के दर्शन करने का सौभाग्य अपने सारे जीवन में ही नहीं हुआ। युनानियों, ईरानियों और कुरानियों ने उस की स्वाधीनता को सदा अपने पांव तले तो कुचला है ही किन्तु आर्यावर्त्त की स्वाधीनता देवी का अपमान विदेशियों के आक्रमण से पहिले भी आर्य्यावर्त्त के अपने राजाओं ने किया हुआ है था। आर्य्यावर्त कभी तो दूसरों का शिकार बना और कभी अपने ही हाथों से अपना शिकार होता रहा। "कभी दूसरों के पांव के नीचे पड़ा रहा और कभी अपने ही पांव के नीचे दबा रहा" ये वाक्य हैं जो एक अशिक्षित भारतवासी के हृदय में भी तीर से चुभ जाते हैं आत्माभिमानी, शिक्षित भारतवासी के अन्दर रोष उत्पन्न कर देते हैं और एक गम्भीर विचार करने वाले ऐतिहासिक के मुख पर घृणा तथा तुच्छता व्यञ्जक हास्य की रेखा डाल देते हैं। ऐसा कहने वाले को ऐतिहासिक, शान्ति से दो वाक्य कहता है:—"महाशय! पक्षपात और आग्रह के रंग से रंगा हुआ चश्मा पहन कर जो ऐतिहासिक यथार्थ देखना चाहता है वह आंख मीच कर पहाड़ पर दौड़ना चाहता है वह पद २ पर खन्दक में गिर पड़ता है।

भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास का सूर्य्य इतना उज्ज्वल है कि तुम्हारे समान पुरुष उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देख सकता। पक्षपात का चश्मा हटाकर देखने वाले के लिये वह चन्द्रमा के समान शीतल है। जिसकी आंखों पर पक्षपात रूपी पर्दे का आवरण है वह एक विशेष पक्षी की तरह दिन को भी रात ही कहता है इस लिये पक्षपात को हटाकर प्राचीन इतिहास को देखो"। पाठक गण! इन दोनों प्रकार के वाक्यों को सुनकर अब हमें स्वयं विचार करना है कि क्या सचमुच भारतवर्ष इसी प्रकार सदा से पराधीनता की कड़ी जञ्जीर में जकड़ा रहा है अथवा केवल कुछ दिनों से ही इसकी यह अवस्था हुई है अगले दो परिच्छेदों में इसी विषय पर हम प्रकाश डालना चाहते हैं।

प्राचीन काल में यह विश्वास था कि राजा प्रजा का सेवक है--प्राचीन साहित्य के अवलोकन से पता लगता है कि प्राचीन भारत में यह सिद्धान्त कभी नहीं माना गया कि राजा ही एक मात्र सर्वोपरि अधिकारी है उसी के हाथ में ही राष्ट्र की लगाम है वह जिधर चाहे राष्ट्र को स्वेच्छया घुमा सकता है और राजा स्वामी है और राष्ट्र उस का एक दीन दास है, प्रत्युत प्राचीन आर्यों का यह विश्वास था कि राजा को प्रजा ने अपनी चौकसी और रक्षा के लिये नियत किया है और इस रक्षा के बदले में प्रजा उस को कुछ वेतन देती है। राजा भी यह समझता था कि वह एक प्रजा का वैतनिक भृत्य है और उसका कर्तव्य है कि वह उस भृति के बदले में प्रजा की सर्व प्रकार से रक्षा करे। अभिषेक के समय राजा को जो वाक्य कहे जाते थे उन में से एक वाक्य यह है कि:—

"योग क्षेमं च आदाय अहं भूयासमुत्तमः" ॥
ऋ० वे० १० । १६६ सू० ।

अर्थात् हे प्रजा जनो ! तुम्हारा अन्न खाता हुआ मैं अपने काम को श्रेष्ठता से निभा सकूँ"। राजा का योग क्षेम प्रजा के हाथ में समझा जाता था न कि प्रजा का योग क्षेम राजा के हाथ में। राजनितिज्ञ चाणक्य लिखता है कि जब "जिस की लाठी उस की भैंस" इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष भयानक स्वरूप दिखाई देने लगा उस समय सब प्रजा मिल कर भगवान् मनु के पास गई और उन से बोली कि हम आपको अपना रक्षक बनाते हैं आप राजा बन कर हमारी रक्षा कीजिये और उसके बदले में हम आपको अपनी आय का छटा हिस्सा दिया करेंगे * इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि राजा को एक वैतनिक भृत्य समझा जाता था। महर्षि बोधायन ने इसी लिए उन दिनों में राजा के लिये भृत्य शब्द का प्रयोग करते हुए लिखा था:—

"षड्भागभृतो राजा रक्षेत्प्रजाम्" अ० १० ।

अर्थात् राजा प्रजा से उसकी आय का षष्ठांश लेता है यह उसकी भृति है इस लिये उसका कर्तव्य है कि जिस से वह भृति लेता है उस की रक्षा करे" भृति लेने वाले को ही भृत्य कहते हैं। जिसका स्पष्ट अभिप्राय है कि बोधायन राजा को प्रजा का भृत्य समझता है। भागवत पुराण इस बात को जिस अत्यन्त सुन्दर वाक्य में कहता है वह प्रत्येक भारतीय के स्मरण करने योग्य है वह कहता है:—

---

* **मात्स्य न्यायाभिभूता प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं। चक्रिरे । कौटिल्य अर्थशास्त्र १३ प्र० ।**

"ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुभि र्द्वारपालो निरूपितः"

। १ । १८ । ३४ ।

अर्थात् "राष्ट्र के ब्राह्मण और क्षत्रियों ने पहरा देने वाले द्वारपाल के समान राजा को अपनी रक्षा के लिए नियुक्त किया हुआ है" । इससे सिद्ध होता है कि प्रजा लोग राजा के वशवर्ती सेवक नहीं समझे जाते थे प्रत्युत राजा को प्रजा का सेवक समझा जाता था ।

प्राचीन विद्वानों के इस प्रकार के वाक्यों को देख कर कौन ऐतिहासिक होगा जो यह नहीं स्वीकार करेगा कि प्राचीन आर्य्यावर्त्तीय लोग राजा को राष्ट्र का एक सत्ताक स्वेच्छाधिकारी नहीं समझते थे किन्तु वे उसे प्रजा का एक प्रकार का सेवक और बन्धुवा समझते थे । नगर २ और ग्राम में राजा के नाम पर जो शासन करने वाले होते थे वे भी प्रजा तथा राष्ट्र की सेवा करने वाले ही माने जाते थे।

राजा की नियुक्ति—किन्तु यहां प्रश्न हो सकता है कि जब राजा प्रजा द्वारा चुना जाकर राज सिंहासन पर बिठाया जाता हो तब तो वह अपने आप को प्रजा का सेवक समझ सकता है परन्तु यदि कोई प्रजा की आज्ञा के बिना ही अपनी शक्ति से राजा बन जाता हो तब तो वह अपने को प्रजा का सेवक कभी नहीं समझेगा । किन्तु हमारा कथन है कि प्राचीन काल में प्रजा की आज्ञा के बिना कोई भी राजसिंहासन ग्रहण न कर सकता था और प्रजा की ही आज्ञा के बिना कोई भी पुरुष राजदण्ड नहीं ले सकता था।।

(क) योग्यतम व्यक्ति को राजा चुनना—प्राचीन काल में एक समय तो ऐसा भी रहा है कि जब सारी प्रजा मिलकर अपने में से एक

योग्यतम पुरुष को राजा के पद के लिये चुन लेती थी। वह राज वंश का ही हो यह कोई नियम नहीं था। राजा के गुणों के रखने वाले किसी भी योग्यतम पुरुष को राज पद के लिये सारी प्रजा चुन लेती थी और राजसिंहासन पर बिठाकर सहर्ष उस का अभिषेक करती थी। वैदिक काल में जब वेद की आज्ञाओं का मानना हर एक के लिये शिरोधार्य था उस समय इसी प्रकार योग्यतम पुरुष को ही राजा चुना जाता था। हम दावे से कहते हैं कि कोई पुरुष हम को वेद में से यह निकाल कर नहीं दिखा सकता कि राजा का ही पुत्र राजा होना चाहिये। राजा राजा बनने के लिये राजकुल में उत्पन्न होने की कोई शर्त नहीं थी प्रत्युत राजा बनने के लिये कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता समझी जाती थी वे विशेष गुण वेद के राज प्रकरण में स्थान २ पर पाये जाते हैं।

(ख) राजवंश में से ही राजा चुनना—परन्तु ज्यों २ कालचक्र घूमता गया शनैः यह सिद्धान्त प्रचलित होगया कि राजकुल में उत्पन्न हुआ २ ही राजा बन सकता है किन्तु तो भी चिरकाल तक यही सिद्धान्त माना जाता रहा कि राजकुल में जो योग्य से योग्य व्यक्ति मिल सके उसी को प्रजा राजा बना कर सिंहासन पर अभिषिक्त करे। राजा अपने कुल में किसी को स्वेच्छया युवराज नहीं बना सकता था जिस को प्रजा राजा बनाने के लिये अनुमति देती थी वही युवराज बन सकता था। इस विषय में हम आगे चलकर विचार करेंगे। यहां पर हम यही दिखाने का यत्न करना चाहते हैं कि प्राचीन काल में प्रजा से नियुक्त किया हुआ ही कोई योग्यतम पुरुष राजा बन सकता था।

(क) सर्व श्रेष्ठ पुरुष राजा बनाया जाता था इसमें प्रमाण:—राष्ट्र में सर्व श्रेष्ठ पुरुष ही प्रजा की अनुमति से राज सिंहासन पर बिठाया जाता था। यह बात निम्नलिखित ऋग्वेद के मन्त्र से स्पष्ट हो जाती है:—

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्॥

ऋ०। १०। १६६।

जो राजा बनना चाहता है वह पुरोहित से कहता है कि "मैं समान देशीय पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ सिद्ध हुआ हूं विरोधियों के आक्रमणों का सहने वाला हूं तथा शत्रुओं को मार भगाने वाला हूं इसलिये मुझे आप राजा बना कर मेरा अभिषेक कीजिये"। इस वाक्य से स्पष्ट है कि राजा बनने के लिये राजकुल में उत्पन्न हुआ २ ही राजा बनाया जा सकता है इस प्रकार की कोई भी वेद की आज्ञा नहीं पाई जाती। जो कोई राज्य भार को उठाने के लिये योग्यतम पुरुष हो उस को राज्य पद के लिये चुनने की आज्ञा देता हुआ भगवान् वेद कहता है:—

असपत्नं सुवध्वम् महते क्षत्राय, महते ज्येष्ठाय,
महते जानराज्याय इन्द्रस्येन्द्रियाय।
इममसुष्य पुत्रं असुष्यै पुत्रं अस्यै विश
एष वोऽमी राजा। यजुर्वेद। ९। ४०।

अर्थात् जिस का विरोधी कोई न हो और सारा राष्ट्र जिस के पक्ष में हो ऐसे पुरुष को बड़े भारी विस्तृत राज्य की अभिवृद्धि, कीर्ति और

ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये राजा चुनो और सब लोग कहें कि अमुक पिता और अमुक माता के पुत्र को हम राजा बनाते हैं"। इस वेद भगवान् के वाक्य को शतपथ ब्राह्मण भी राज्याभिषेक में लगाता हुआ योग्यतम पुरुष को प्रजा द्वारा राजा बनाये जाने की आज्ञा देता है। "असपत्नं सुवध्वम्" इस वाक्य की लिखी हुई व्याख्या को ब्राह्मण में देखकर कौन कह सकता है कि उस समय राजा चुना नहीं जाता था। राजा को चुनने का उपदेश देते हुए वेद भगवान् मनुष्यों को यह कहने का उपदेश देते हैं कि:—

> **"नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यै इयन्ते राड्यन्ता सियमनो ध्रुवोऽसि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा"** यजुर्वेद । ९ ।

अर्थात् प्रजा के प्रधान २ पुरुष कहते हैं। "हे मातृभूमि ! तुझे नमस्कार है हे हमारी प्यारी मातृभूमि तुझे नमस्कार है हे राजन् तू हमारी मातृभूमि का नियन्ता और धारण करने वाला है तुझ को हम इसकी कृषि को प्रफुल्लित करने के लिये समस्त देशवासियों के कल्याण के लिये उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिये और उनके पालन पोषण के लिये राजा बनाते हैं। तथा फिर वे कहते हैं।

> **सार्द्धं सत्याय शवसे**
> **इन्द्र त्वा वर्तयामसि** ॥ यजुर्वेद । ९ ॥

अर्थात् शत्रुओं से देश की रक्षा के के लिये तुझे राजा बनाते हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि देश की कृषि, देश का आनन्द, देश का धन, देश का पालन पोषण तथा शत्रुओं से देश की रक्षा करने

का भार जो कोई अपने ऊपर लेने के योग्य होता था उसको सारी प्रजा मिलकर राजा बनाती थी । राजा भी यह समझता था कि राष्ट्र उसकी मलकीयत नहीं है राष्ट्र प्रजा का अपना है इस लिये सिंहासन ग्रहण करते समय राजा प्रजा से राष्ट्र को मांगता था और यह समझा जाता था कि प्रजा अपने आप अपना राष्ट्र रक्षा के निमित्त उसको दे रही है । देखिए राजा किन नम्र शब्दों में प्रजा के पुरुषों से राज्य मांगता है । * सूर्य के समान दीप्ति वाले विद्वान् प्रजा पुरुषो ! राष्ट्र का देना आप के अधिकार में है आप मुझ को राष्ट्र दीजिए आप सारे मनुष्यों को आनन्द देने वाले हैं आप गौ आदि पशुओं तक की रक्षा करने वाले हैं आप बलशाली और और प्रजा की रक्षा

---

* सूर्यत्वर्चसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ।
सूर्य्यत्वर्चसस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मेदत्त ।
मान्दास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा ।
व्रजक्षितस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमस्मै दत्त ।
वाशास्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त ।
शविष्ठस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त।
शक्वरीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमस्मै दत्त ।
जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त ।
विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मेदत्त ।
मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तांमहिक्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना
अनाधृष्टाः सीदत सहौजसोमहिक्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥
य० । १० । ४॥

करने वाले हैं आप सर्वजनों के पालन पोषण का यत्न करने वाले ही नहीं किन्तु आप समस्त जीवमात्र की रक्षा करने वाले हैं आप स्वयमेव राज्य करने वाले हैं आप मुझे राष्ट्र दीजिये। आगे कहता है कि हे प्रजाओ ! जो आप वीर हैं और सब के प्रति माधुर्य दिखाने वाली हैं आप मिलकर ये बड़ा भारी राष्ट्र मुझे दीजिये और शत्रुओं से निर्भय हो कर अपने बल को बढ़ाती हुई राष्ट्र में निवास कीजिये"। इससे स्पष्ट है राजा राष्ट्र को अपनी मलकीयत न समझ कर प्रजा की ही मलकीयत समझता था।

किस प्रकार के योग्य पुरुष को राजा बना कर राष्ट्र दिया जाता था इस के लिए एक वेद का वाक्य और दिखाते है।

सोमं राजानमवसे ऽग्निमन्वारभामहे ॥ यजु० ९ । २६ ॥

अर्थात् प्रजाओं के प्रति शान्ति से वर्त्तने वाले और शत्रुओं के प्रति अग्नि के समान क्रोध दिखाने वाले वीर पुरुष को हम राष्ट्र की रक्षा के लिए राजा बनाते हैं"। राजा बनाते समय वेद का यह वाक्य बोला जाता था। इन कतिपय वाक्यों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में कोई समय था जब कि सारी प्रजा के विद्वान् पुरुष मिल कर किसी योग्यतम पुरुष को राजा चुना करते थे।

तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद में भी योग्यतम पुरुष को राजा बनाने के वर्णन में आता है:—

रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ।
वसवस्त्वां पुरस्तादभिषिञ्चन्तु....इत्यादि *

"अर्थात् जो आप रथियों में सर्व श्रेष्ठ महारथी हैं जो युद्धविद्या के सब से योग्य पण्डित हैं उन आप को सभी प्रजा के विद्वान् पुरुष मिलकर राजसिंहासन पर अभिषिक्त करें"। वैदिक समय के प्राचीनतम ग्रन्थों को देखने वाले को यह अवश्य मानना पड़ेगा कि उन में राजा बनने के लिए किसी राजकीय या उच्च धनी कुल में उत्पन्न होने की कोई शर्त नहीं पाई जाती है । इसी विचार को ध्यान में धरते हुवे व्यास भगवान् कहते हैं कि "जो पुरुष राष्ट्र में सत्पुरुषों की रक्षा कर सके और राष्ट्रविघातक असत्पुरुषों को वश में रख सके उसी पुरुष को राजा बनाना चाहिये वही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है"+। योग्यतम पुरुष को राजा बनाया जाता था इस प्रकरण में ऐतरेय ब्राह्मण का एक वाक्य अत्यन्त ही स्पष्ट होगा । वहां लिखा है कि "सब विद्वान् पुरुषों ने मिलकर निश्चय किया कि अमुक पुरुष हम सब में सब से अधिक तेजस्वी

---

* रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ।
वसवस्त्वां पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा ।
विश्वेदेवास्त्वा मुत्तरतोभिषिञ्चन्तु ॥
तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद । २ का० । ७ अ० । १५ अनु० ॥

\+ नित्यं यस्तु सतो रक्षेदसतश्च निवर्तयेत् ।
स एवं राजा कर्तव्य स्तेन सर्वमिदं धृतम् ॥
दातारं संविभक्तारं मार्दवोपगतं शुचिम् ।
असन्त्यक्तमनुष्यं च तं जनाः कुर्वते नृपम् ॥

बलशाली, सहनशील और सज्जन है यही हमारा नेता बन सकता है इस लिये इसे ही राजा बनाकर अभिषिक्त करते हैं" + । यह वाक्य तो स्पष्ट कह रहा है कि तेज बल सहनशीलता सज्जनता और शक्ति में जो सब से बढ़कर होता था उसी को राजा बनाया जाता था ।

(ख) राजा की प्रजा द्वारा नियुक्तिः—अब हम यही सिद्ध करना चाहते हैं कि चाहे कोई समस्त प्रजा में से चुना जाता था या केवल राजकुल में से चुना जाता था परन्तु उसकी नियुक्ति के लिए प्रजा की आज्ञा अत्यावश्यक थी । प्रजा जिस को राजसिंहासन पर बिठाना चाहती थी वही राजसिंहासन का अधिकारी समझा जाता था ।

प्रथम युक्तिः— प्राचीन काल में राजाओं का राज्याभिषेक जिस जिस प्रकार होता था उसको देखकर पता लगता है कि राजा को प्रजा की ओर से राजसिंहासन दिया जाता था ।

राज्याभिषेक के समय पुरोहित या अध्वर्यु राजा को अथर्ववेद के अनुसार निम्नलिखित वाक्य कहता था कि:—

हे राजन् तुझे राष्ट्र दिया जाता है तू प्रजाओं का पालक होकर सिंहासन पर विराजमान हो सारी दिशायें अथवा सर्वदिशाओं के मनुष्य

+ ते देवा अब्रुवन्स्त प्रजापतिका । अयं वै देवानां ओजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः । इम मेवाभि षिञ्चामहा इति ॥ ३८ अ० ॥

तुझे राजा स्वीकार करें और तेरे पास आकर तुझे नमस्कार करें।

सारी दिशाओं प्रदिशाओं की प्रजायें तुम्हें राजा चुनें राष्ट्र का तू मुखिया है राष्ट्र के शिखर पर विराजमान होकर हम सब को धनधान्य से अलंकृत करें।

दोनों अश्विनी कुमार, मित्रावरुण, सारे देव और सारे मनुष्य तुझे राजा स्वीकार करें।

भिन्न २ प्रकार की सब प्रजायें एकत्रित हो कर एक सम्मति करके तुझ को अपना राजा स्वीकार करें[४]।

इन वाक्यों को देख कर कौन ऐसा निष्पक्षपात पुरुष है जो यह नहीं कहेगा कि उस समय भिन्न २ प्रकार की सब जातियें या उनके प्रतिनिधि इकट्ठे होते थे और वे किसी योग्यतम पुरुष को एक सम्मति करके राजा बनाते और उसे सिंहासन पर अभिषिक्त करते थे। उपरोक्त वाक्यों के अतिरिक्त वेद के राज प्रकरण तथा ब्राह्मणों के अभिषेक प्रकरण में से इसकी पुष्टि के लिये अनेक प्रमाण मिलते हैं। एक स्थान पर पुरोहित कहता है:—

---

१. २, ३, ४ आत्वागन् राष्ट्रं सहवर्चसो दिहि
प्राङ् विशांपतिरेकराट्त्वं विराज ॥
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु उपसद्योनमस्यो भवेह ॥
अथर्व ३।४।१॥

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
अश्विना त्वाग्रे मित्रा वरुणोभा विश्वेदेवा मरुत स्त्वा ह्वयन्तु ॥
पथ्या रेवतीः बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्यवरीयस्ते अक्रन्।
तास्त्वा सर्वा संविदाना ह्वयन्तु दशमी मुग्रः सुमना वशेह ॥

"युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसः" ॥ यजु० * ।

अर्थात् हे राजन् सकल विद्याओं के जानने वाले विद्वान् पुरुष तुझे राज पद पर नियुक्त करें । तथा

ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रतिमित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥ अथर्व० +

हे राजन् प्रजा के सभी पुरुष और तुम्हारे सारे मित्र तुम्हें राजा स्वीकार करें तथा मेघ और अग्नि आदि दिव्य पदार्थ तेरी प्रजा का कल्याण करते रहें । इस से पता लगता है कि चाहे प्रजा के कुछ विद्वान् पुरुष ही उसको मिलकर राजा चुनते थे तो भी समझा यही जाता था कि प्रजा का प्रत्येक पुरुष उसे राजा स्वीकार करता है । प्रजा जब किसी को राजा चुन लेती थी तो पुरोहित जाकर उस से कहता था कि—

स राजा राज्यमनुमन्यताम् ।
इदं विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु × ॥

अर्थात् हे राजन् हम आपको यह राज्य देना मान चुके हैं आप इसे स्वीकार कीजिये । व्याघ्र के समान इस सिंहासन पर विराजमान हूजिय और सारी दिशाओं का विजय कीजिये जिस से प्रजायें तुम को राज्य के लिये पसन्द करें । अर्थात् राजा का पसन्द करना प्रजा का काम था

---

* यजु । ९ । ८ तथा अथर्व । ३ । ९ । ३ ॥
+ अथर्व ३ । ९ । ३ ॥
× अथर्व ४ । २ । ८ ॥ अथर्व ६ । ८७ में भी (विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु)

और जब वह किसी को राज्य के लिए पसन्द कर लेती थी तो वह राजा से प्रार्थना करती थी कि "राज्यमनुमन्यस्व" अर्थात् "आप हमारे दिये राज्य को स्वीकार कीजिये। इस विषय में शतपथ का वाक्य भी बड़ा मनोरञ्जक है। वह कहता है कि "जब किसी का अभिषेक करना हो तो पहिले द्युलोक और पृथिवी लोक से पूंछ लेना चाहिये कि वे उसे राजा स्वीकार करते हैं कि नहीं? यदि वे अनुमोदन करें तभी उसका राज्याभिषेक हो सकता है"। आगे वह कहता है कि "पृथिवी सब की माता है इस लिये पुरोहित या अध्वर्यु जो अभिषेक करने वाला है पहिले पृथिवी पूछ ले और जिस को वह आज्ञा दे उसका अभिषेक करे क्योंकि पृथिवी ने जिसको अनुमति दे दी हो उसी का अभिषेक हो सकता है। फिर अध्वर्यु सब देवताओं से पूछे और उनकी अनुमति पाकर उसका राज्याभिषेक करे *" इस वाक्य से स्पष्ट है कि पृथिवी अर्थात् पृथिवी निवासी प्रजाजन की अनुमति से ही किसी को राज्यसिंहासन दिया जा सकता है।

इस के अतिरिक्त जब राज्याभिषेक होता था उस समय भी यही दिखाया जाता था कि समस्त प्रजाओं की अनुमति से ही वह राजा बनाया जा रहा है। "कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा में कहा है

---

* तदेनमाभ्यां द्यावापृथिवीभ्या मावेदयति।
तस्मै सवमनुमन्येताम् ताभ्यामनुमतः सूयते
इयं वै पृथिवी अदितिः तदेनमस्यै पृथव्यै आवेदयति।
सास्मै सवमनुमन्यते तयानुमतः सूयते॥
तथाभ्य एवैन मेतद्देवताभ्य आवेदयति ता अस्मै सवमनुमन्यन्ते ताभिरनुमतः सूयते॥

है कि "समस्त प्रजाओं के बीच में राज्याभिषेक किया जाता है + इसी से राजा प्रजा का प्रिय हो सकता है"। इस से पता लगता है कि राजा को सर्व प्रिय बनाने के लिये वे आवश्यक समझते थे कि समस्त प्रजाओं द्वारा राजा का अभिषेक हो। इस के लिये वहां जो पंक्ति दी है वह भी अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। उस शाखा में कहा है कि प्रजा की इच्छा पर ही राजा निर्भर है ×। इस लिये राजा का सर्व प्रजाओं के मध्य में अभिषेक किया जाता है। इस वाक्य को सुन कर कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष होगा जो यह न मानेगा कि प्राचीन समय में प्रजा राजा पर निर्भर नहीं समझी जाती थी। कृष्ण यजुर्वेद की इसी शाखा में आगे लिखा है कि "राजा बनाये हुए ऐसे महारथी और ज्ञानी पुरुष का वसु रुद्र आदित्य तथा समस्त देव लोग चारों दिशाओं से अभिषेक करें ÷"। अर्थात् समस्त प्रजा के योग्य पुरुषों द्वारा राजा का राज्याभिषेक होना चाहिये।

राजा की नियुक्ति प्रजा की ओर से होती है यह एक प्राचीन काल का प्रबल सिद्धान्त था। व्यास भगवान् कहते हैं कि "राष्ट्रस्यैतत्कृत्यतमं राज्ञ एवाभिषेचनम् *" "अर्थात् यह राष्ट्र का काम है कि

\+ विश एवैतन्मध्यतोऽभिषिच्यते। तस्माद्वा एष विशः प्रियः ॥
विशो हि मध्यतोऽभिषिच्यते। २ का। प्र० ७। अनु० २ ॥

× विशि राजा प्रतिष्ठितः।

÷ वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु।
रुद्रास्त्वा दक्षिणतोऽभिषिञ्चन्तु।
आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु ॥
विश्वे त्वा देवा उत्तरतोऽभिषिञ्चन्तु।
२ का०। प्र० ७। अनु० १५ ॥

* राष्ट्रस्यैतत्कृत्यतमं, राज्ञ एवाभिषेचनम्।
तस्माद्राजैव कर्तव्यः सततं भूति मिच्छता ॥

वह राजा नियुक्त कर के उसका राज्याभिषेक करें" । आगे व्यास भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष अपना कल्याण चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपनी सभा के लिए राजा को बनायें"+ । इसका तात्पर्य यह है कि व्यास भगवान् की सम्मति में राजा का राज्याभिषेक प्रजा की ओर से ही होता था और साधारण पुरुष यह भी सोच सकता था कि समस्त प्रजा द्वारा राजा का अभिषेक होना असम्भव है इस लिए केवल यह दिखाने के लिए कि राजा समस्त प्रजा की ओर से सिंहासन पर बैठाया गया है यह नियम किया हुआ था कि सब वर्णों के प्रतिनिधि उठ कर अपने २ वर्णों की ओर से उसका अभिषेक करें । इस का तात्पर्य यह समझा जाता था कि सब वर्ण वाले उसे राजा स्वीकार करते हैं । शतपथ ब्राह्मण कहता है कि "पलाश की लकड़ी के पात्र से ब्राह्मण उस राजा का अभिषेक करे वट वृक्ष की लकड़ी से बने हुए पात्र से क्षत्रिय अभिषेक करे तथा वैश्य आकर पीपल के काष्ठ से बने हुए पात्र से उसका अभिषेक करे" × । आगे चलकर वही ब्राह्मण कहता है कि सन्मुख बैठे हुए राजा का सब से पहले ब्राह्मण या अध्वर्यु या उस का जो पुरोहित हो वह अभिषेक करे और पीछे से अन्य भी उठ २ कर उस का अभिषेक करें । इस प्रकार सब वर्णों के प्रतिनिधियों से अभिषेक कराने का वर्णन करता हुआ अग्नि पुराण भी कहता है कि पहले २ ब्राह्मण उठे और सुवर्ण के घट से घृत द्वारा उसका अभिषेक

+ एवं ये भूति मिच्छेयुः पृथिव्यां मानवाः क्वचित् ।
कुर्यु राजानमेवाग्रे प्रजानुग्रहकारणात् ॥ ६७ अ० । ३३ ।

× पालाशं भवति तेन ब्राह्मणोऽभिषिञ्चति ।
नैयग्रोधपादं भवति तेन मित्रो राजन्योऽभिषिञ्चति ॥
आश्वत्थं भवति तेन वैश्योऽभिषिञ्चति । २६२ पृ० ॥

करे, फिर क्षत्रिय उठे और रजत के घट से दूध द्वारा उसका अभिषेक करे, फिर वैश्य उठे और ताम्र के घट से दधि द्वारा उसका अभिषेक करे, फिर शूद्र उठे और मट्टी के घट से पानी द्वारा उसका अभिषेक करे +।"

इन वाक्यों से पता लगता है कि राजा को बताया जाता था कि सब प्रजाओं की ओर से उसे राजा बनाया जा रहा है। इसी लिए अग्नि पुराण में कहा है कि जब उपरोक्त ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त सब अभिषेक कर चुकें तब पुरोहित राजा की ओर मुख करके कहे कि हे राजन् उत्तर कुरु के जो रमणीय देश हैं वे आप को अभिषेक द्वारा पवित्र करें तथा जितने भी दूर २ के हिरण्यक, भद्राश्व, केतुमाल, वर्ण, बलाहक, हरिवर्ष, किम्पुरुष, इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप और सौम्यक आदि नाना देश हैं वे सब आपको अभिषेक द्वारा पवित्र करें *"पाठकवर्ग ! इस का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि राजा को बताया जाता था कि जितने भी समीपवर्ती और दूरवर्ती देश हैं उन सब की ओर से तुम्हें राज्याधिकार देकर राज्यासन पर बिठाया जाता है। इस के आगे पुरोहित दूर २ की सब नदियों के नाम लेता हुआ कहता है कि हे राजन् जितनी भी गंगा, सरस्वती, शतन्द्र, गण्डकी, अच्छोदा, विपाशा

\+ अग्नि पुराण २१९ अध्याय ॥

* अग्निपुराण—उत्तराः कुरवः पान्तु रम्या हिरण्यकस्तथा ।
भद्राश्वः केतुमालश्च वर्णश्चैव बलाहकः ॥
हरिवर्षः किम्पुरुषः इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् ।
ताम्रवर्णो गभस्तिमान् नागद्वीपश्च सौम्यकः ॥

वितस्ता, देविका, वरुणा, विश्विरा, गोमती, धारा, चर्म-ण्वती रूपा मन्दाकिनी, महानदी, गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा अरणी चन्द्रभागा शिवा और गौरी आदि नदियां है वे सब तुम को अभिषेक द्वारा पवित्र करें"। इसका भी यही अभिप्राय है कि इन सब नदियों तक का विस्तृत देश तुम्हारा अभिषेक करता और तुम्हें राजा बनाता है"।

इन सब अभिषेक विषयक उद्धरणों को देख कर यही समझा जा सकता है कि प्राचीन काल में राजा समस्त प्रजा की ओर से ही बनाया जाता था। किन्तु इस के लिये प्राचीन काल में यह होता था कि जब किसी को चक्रवर्ती राजा बनाया जाता था तो दूर २ की सब नदियों और समुद्रों से पानी लाकर उसका अभिषेक किया जाता था जिस का भाव यह था कि समस्त देश की ओर से वह सिंहासन पर बिठाया जा रहा है।

कुछ प्राचीन आर्य राजाओं के दृष्टान्त भी हम यहां प्रस्तुत करते हैं जिनके विषय में ऐतिहासिक साक्षी हैं कि उनको प्रजा की ओर से अभिषेक द्वारा राजा बनाया गया था।

पृथु राजा का इतिहास लिखते हुए महर्षि व्यास कहते हैं कि ऋषियों, ब्राह्मणों और प्रजा के मुखियों ने मिलकर पृथु को राजा बना सिंहासन पर बिठाकर अभिषेक किया *। ब्राह्मण ग्रन्थों में तो यहां तक लिखा है कि न केवल चारों वर्णों की ओर से ही चार प्रतिनिधि उस का अभिषेक करें किन्तु राज्य में रहने वाली सब प्रकार की कार्य करने वाली भिन्न २ श्रेणियों की ओर से उसका अभिषेक हो। इसी

* ऋषिभिश्च प्रजापालैः ब्राह्मणैश्चाभिषेचितः। शान्तिपर्व

का दृष्टन्त हम रामायण में पाते हैं । वहां लिखा है कि श्रीरामचन्द्र को न केवल ऋषियों ब्राह्मणों क्षत्रियों वैश्यों तथा शूद्रों की ही ओर से अभिषेक दिया गया किन्तु प्रजा की भिन्न २ श्रेणियों की ओर से भी उनका अभिषेक किया गया था। रामचन्द्र जी को लेने के लिए जब भरत जी बन में जाते हैं तो रोदन करते हुए कहते हैं कि मैं कदापि सिंहासन स्वीकार नहीं करूंगा आप अयोध्या को लौटिये और वहां आपको राज सिंहासन पर बिठा कर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विजमात्र मिलकर आप का अभिषेक करेंगे + । अथवा यदि आप वहां नहीं लौटते हैं तो जब प्रजायें वसिष्ठ और बड़े २ मन्त्रज्ञ ऋषियों के साथ आप का यहीं राज्याभिषेक करेंगी × ।

अग्निपुराण में भी जहां रामचन्द्र की कथा आती है वहां लिखा है कि रामचन्द्र जी के गुणों से मुग्ध होकर सब प्रजाओं ने उसका राज सिंहासन पर अभिषेक किया ÷ । इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर के अभिषेक के विषय में लिखते हुए महर्षि व्यास कहते हैं कि "सब से पहले महाराज श्रीकृष्ण जी ने उनका अभिषेक किया फिर महाराज धृतराष्ट्र अभिषेक करने के लिये उठे और उनके पश्चात् सब प्रजाओं की ओर से उनका अभिषेक किया गया।" ※

\+ अभिषेक्यन्ति काकुत्स्थं अयोध्यायां द्विजातयः ॥

× इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह ।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्र कोविदाः ॥ रामायण

दशरथ कहते हैं:—अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम् ।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्यामि पुत्रक । २।२६ । अयो० ॥

÷ गुणानुरागाद्राज्ये त्वं प्रजाभिरभिषेचितः ॥ अ० ६ । २ ॥

※ तत उत्थाय दाशार्हः शंखमादाय पूजितम् ॥
अभ्यषिञ्चत्पतिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
धृतराष्ट्रश्च राजर्षिः सर्वाः प्रकृतयस्तथा ॥

इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण कर्ण को मनाने के लिए जाते हैं तो कहते हैं हे कर्ण तुम पाण्डवों में सब से बड़े भाई हो तुम उनका पक्ष लोगे तो सारे विद्वान् द्विजाति लोग तुम्हें सिंहासन देकर तुम्हारा अभिषेक करेंगे * ।

इस प्रकार जब प्रजा की ओर से राजा को अभिषेक दिया जाता था तो यह स्पष्ट है कि राजा बनाने के लिए प्रजा की सम्मति अत्यावश्यक थी ।

द्वितीय युक्तिः— राजा को जो उस समय उपदेश दिया जाता था उससे पता लगता है कि राजा प्रजा की ही सम्मति से बनाया जाता था:—अभिषेक देते समय पुरोहित राजा को प्रजा की भलाई के लिये सावधान करता था इस कथन से भी स्पष्ट है कि प्राचीन समय में राजा को प्रजा की ओर से नियुक्त किया जाता था ।

ऋग्वेद के वाक्य के अनुसार पुरोहित राजा से कहता था "हे राजन् ! तू अविचालित होकर सिंहासन पर विराजमान हो तू अपने आपको ऐसा बना कि सारी प्रजायें तुझे पसन्द करें तथा कोई ऐसा अवसर न आये कि तेरा राष्ट्र तेरे हाथ से निकल जाय" + इस का स्पष्ट तात्पर्य है कि प्रजाओं को प्रसन्न और सुखी रखना राजा

---

* अभि त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥ उद्योग [illegible]॥

\+ आत्वा हार्ष मन्तरेधि ध्रुवास्तिष्ठा विचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्र मधिभ्रशत् ॥

ऋ० । म० १० । १७३ सू । म० १ ।

का काम है । यदि वह ऐसा न करे तो उस से राष्ट्र छीना भी जा सकता है। पुरोहित राजदण्ड से राजा को शनैः २ ताड़ित करता था इसका अभिप्राय यही होता था कि राजा को बताया जाता था कि वह भी दण्डनीय हो सकता है।

फिर यजुर्वेद के बचनानुसार पुरोहित कहता था कि "हे राजन्! हमारी प्रजा में रहने वाले ब्राह्मणों क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों की उन्नति करना तुम्हारा काम है" × ।

राजा का प्रजा के प्रति जो उत्तरदातृत्व था वह उसे उसी समय समझा दिया जाता था और फिर पुरोहित कहता था कि हे सौम्य गुण वाले राजन् तू सब प्रजाओं पर शासन कर और सब प्रजायें तुझ पर शासन करें" ÷ ।

पाठकगण ! इस प्रमाण से अधिक और कौन सा प्रमाण मिल सकता है जिस में स्पष्ट कहा है कि राजा ही केवल प्रजा पर शासन नहीं करता किन्तु प्रजा भी राजा पर शासन करती है। अर्थात् राज्याभिषेक देते समय राजा से प्रतिज्ञा कराई जाती थी कि वह प्रजा की सम्मति के बिना स्वेच्छया राजकार्य नहीं करेगा। फिर पुरोहित कहता है कि "हे राजन् तू हम लोगों का मित्र है तू वही राजकार्य कर जो

× रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ यजु० १८ । ४८ ॥

÷ सोम राजन्विश्वास्त्व स्प्रजा उपावरोह ।
विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ॥ यजु० । ६ । २६ ॥

धार्मिक विद्वान् पुरुषों को प्रिय हो"* । इस से पता लगता है कि प्रजा के लोग राजा को न केवल एक शासक ही समझ कर उससे भय खाते थे परन्तु उसको अपना एक मित्र समझ कर उस के साथ मित्र की तरह व्यवहार भी करते थे। वह समय कैसा सुन्दर होगा जब प्रजा राजा को न केवल शासक मात्र ही समझती थी परन्तु उसे अपना प्रिय मित्र भी समझती थी। इस प्रकार राजा को सावधान करने वाले अनेक वाक्य दिखाये जा सकते हैं पर उदाहरण के लिये इतने ही पर्याप्त समझ कर केवल एक और वाक्य कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का प्रस्तुत करते हैं। अभिषेक प्रकरण में पुरोहित राजा को उपदेश देता हुआ कहता है कि "हे राजन् राष्ट्र की रक्षा करने के लिये सदा जागते रहो" +। अर्थात् उस समय राजा को राष्ट्र रक्षा की प्रतिज्ञा कराई जाती है।

इन उपर्युक्त उद्धरणों से पता लगता है कि राजा प्रजा की ओर से सिंहासन पर बैठाया जाता था अन्यथा यदि वह स्वेच्छया ही राजा बनता था तो प्रजा का प्रतिनिधिभूत पुरोहित उस से इस प्रकार की प्रतिज्ञा कैसे करवा सकता था?

तृतीय युक्ति:— | **सिंहासनारोहण करते समय राजा प्रतिज्ञा करता था:**—अभिषेक के समय राजा को भी राष्ट्र के रक्षा करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। ऐतरय

* त्वन्देव सोम इन्द्रस्य प्रियस्पाथो पीहि, अस्मत्सखा।
त्वन्देव सोमविश्वेषां देवानां प्रियंपाथो पीहि ॥ यजु० ८। ५०

\+ क्षत्रे राष्ट्रे च जागृहि ॥ यजु० ७। अ० ६।

ब्राह्मण में लिखा है कि "राजा को शपथ दिला कर अभिषेक देना चाहिये" * ।

इस लिये अभिषेक के समय राजा को निम्नलिखित शपथ लेनी होती थी:—यदि मैं तुम से द्रोह करूं तो पुरोहित मेरे सारे किये हुए इष्टापूर्त मेरे पुण्य, मेरी आयु, और मेरी सन्तान को नष्ट कर दे" ।

पाठक वर्ग ! क्या कोई स्वेच्छाचारी सिंहासन पर बैठने वाला इस प्रकार की शपथ कर सकता है स्वेच्छाचारी राजा तो राष्ट्र से सदा ही द्रोह करने वाला होगा वह कभी भी ऐसी शपथ नहीं ले सकता ।

फिर पुरोहित उस को जल दिखाता था और राजा जल देख कर प्रतिज्ञा करता हुआ कहता है "मैं इस राष्ट्र को समृद्ध बनाऊंगा इसी लिये मैं इस जल को देखता हूं +" अर्थात् जल को साक्षी रखकर समस्त प्रजा के सन्मुख राजा प्रतिज्ञा करता है कि वह राष्ट्र को श्रीमान् बनायेगा । इन उपर्युक्त प्रतिज्ञाओं के अतिरिक्त वह अभिषेक लेते समय अन्य भी अनेक प्रतिज्ञा करता है जिन में से दो एक उदाहरण के लिये दिखाते हैं । राजा प्रजाओं के प्रति जो भाषण करता था उसका अभिप्राय यह है कि "हे प्रजाजनो ! जिस प्रकार दण्ड और ज्या मिलकर धनुष बनते हैं और दोनों मिलकर ही बाण छोड़ते हैं उसी प्रकार मैं और तुम दोनों मिलकर ही राज्य को बनते और राज

---

* अस्मिन्राष्ट्रे श्रियमावे शयाम्यतो द्विषोः प्रति पश्याम्यापः ॥
ऐतरेय ४० अ० । ३ खं० ।

\+ अग्नेव चोऽभिनहृामि उभे आर्त्नी इवज्यया ॥
१६६ सू० । १० मण्डल । ऋग्वेद ॥

कार्य को बजाते हैं × । आगे वह कहता है कि मेरी प्रजाओ ! मैं तुम्हारी विचारों और तुम्हारी सभा को स्वीकार करता हूं" ÷ । अर्थात् जो तुम्हारी राज सभा है वह जो विचार करेगी उसको मैं सदा ही स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता हूं । अर्थात् राजा को राज सभा के सामने यह प्रतिज्ञा करवाई जाती थी ।

इन के अतिरिक्त राजा के भाषण में से केवल एक वाक्य और दिखाकर इस प्रकरण को हम यहीं समाप्त करते हैं । उस में राजा कहता है "कि समस्त भिन्न २ प्रजायें मेरे भिन्न २ अंगों के तुल्य हैं ।" अर्थात् जिस प्रकार कोई अपने अंगों का हित करता है उसी प्रकार मैं समस्त प्रजाओं के हित के लिये ही सब कार्य करूंगा ।

राजा को जिन शब्दों में प्रतिज्ञा करवाई जाती थी उन से पता लगता है कि राजा को यह बताया जाता था कि प्रजा से भिन्न रह कर उस की कुछ भी सत्ता नहीं; जो प्रजा की इच्छा है वही उस की इच्छा है । जिस प्रकार बिना ज्या के केवल दण्ड से बाण नहीं छोड़ा जा सकता उसी प्रकार केवल राजा से ही राज्य नहीं चलाया जा सकता प्रत्युत प्रजा के साथ रह कर ही राजा राज्य कर सकता है । इस लिये यदि यह सत्य है कि उपरोक्त प्रतिज्ञायें राजा से करवाई

× आवश्चित्तमासो व्रत मावाहं समितिं ददे ।
१६६ सू० । १० मण्डल । ऋग्वेद ॥

÷ पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।
उरू अरत्नी जानुनीर्विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥

यजु० २० । ८
शतपथ अभिषेक

जाती थीं तो यह भी सत्य है कि राजा को प्रजा की ओर से राज्य के लिये नियुक्त किया जाता था।

प्राचीन काल में राजा को प्रजा चुना करती थी इस की सिद्धि के लिये हमने ऊपर कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये हैं उनके अतिरिक्त उस की सिद्धि के लिये अब हम कुछ ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिन से अत्यन्त स्पष्ट हो जायगा कि प्राचीन काल में यह सिद्धान्त काम में भी लाया जाता था।

चतुर्थ युक्तिः—
ऐतिहासिक साक्षियां

यह वेद की आज्ञा जो हम ऊपर लिख आये हैं "त्वां विशो वृणतां राज्याय" अर्थात् प्रजा राजा को शासन कार्य के लिये चुने यह वैदिक समय में अवश्य ही कार्य में लायी जाती होगी। इसी लिये ऐतरेय ब्राह्मण देव और असुरों की कथा लिखता हुआ कहता है कि "देव लोगों ने जब देखा कि असुर लोग उनको विजय करते जाते हैं वे एकत्रित हुए और उन्हों ने निश्चय किया कि—

अराजतया वै नो जयन्ति राजानं करवामहा इति तथेति ते सोमं राजानमकुर्वन्॥

अर्थात् असुरों पर विजय पाने के लिये किसी को राजा बनाना चाहिये यह सोचकर उन्होंने साम का अपना राजा बनाया। चाहे इस कथन का कुछ भी तात्पर्य हो किन्तु राजा को चुनने का भाव इस में स्पष्ट वर्णित है। इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण में भी राजा को चुनने का भाव पाया जाता है। वह ब्राह्मण कहता है कि जब प्रजायें शत्रुओं से भयभीत होने लगी तो वे रक्षा की इच्छा से एक वीर महापुरुष के पास पहुंची और बोली—

"भगवन्नस्मैव राजानं वृणीमहे" (गोपथ १ प्रकरण)

अर्थात् महाराज आप हमारा भय से रक्षण करने वाले हैं इस लिये हम सब आप को ही अपना राजा चुनते हैं। इस से भी प्रतीत होता है कि राजा को चुनने का भाव आर्यों में अतिप्राचीन है।

चाणक्य भी अपने अर्थशास्त्र में लिखता है कि पहले कोई राजा नहीं था किन्तु जब बलवान् मनुष्य निर्बलों को सताने लगे तब सब ने मिल कर मनु को अपना राजा चुना। अर्थात् पहले २ जो राजा बना वह प्रजा के चुनाव से ही बनाया गया। मनु तथा पृथु, इन को मनुस्मृति के कथनानुसार सब प्रजाओं ने इसी लिये राज पद के लिये चुना था कि वे अत्यन्त विनीत थे। अर्थात् किसी वीर परन्तु विनीत पुरुष को प्रजा राजा चुने, यह प्राचीन विश्वास था। परन्तु समय परिवर्तन शील है। इसलिये इस सिद्धान्त में भी परिवर्तन हो गया। शनैः शनैः एक ऐसा समय आगया जब राजवंश में से ही किसी को राजपद के लिए चुना जाने लगा। राज पुत्रों में जो योग्य पुरुष हो उसी को प्रजा राजपद के लिये चुन लेती थी, इसी का उदाहरण हमें रामायण में मिलता है। दशरथ पहले मन्त्रिसभा में यह विषय प्रस्तुत करते हैं कि किस को युवराज बनाया जाय ?' मन्त्रिसभा इस पद के लिए श्रीरामचन्द्र जी को नियुक्त करती है। परन्तु इतने मात्र से ही यह प्रस्ताव निश्चित नहीं हो जाता। फिर यह प्रस्ताव परिषत् में रक्खा जाता है। हम पिछले परिच्छेद में यह सिद्ध कर चुके हैं कि सर्व साधारण की सभा का नाम ही परिषद् था। महाराज दशरथ इस परिषद् में सभा के निश्चय को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥

अर्थात् यदि यह उपर्युक्त निश्चय जो मैंने आप के सन्मुख विचारार्थ रखा है आप को ठीक प्रतीत होता है तो इस का अनुमोदन करें यदि आप इस से असहमत हों तो बताइये कि और क्या किया जाय ? इतना कहकर दशरथ अपनी वक्तृता समाप्त करते हैं; तब बाल्मीकि कहते हैं कि इस प्रस्ताव को सुनकर—

ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ।
समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः ॥
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥

वहां जो मुख्य २ ब्राह्मण क्षत्रिय और सर्वसाधारण लोग बैठे हुए थे वे सब परस्पर विचार करने लगे । ठीक २ विचार करने के पश्चात् जब सब सहमत होगये तो उन्होंने अपना किया हुआ निश्चय दशरथ महाराज के सन्मुख रखा । बाल्मीकि कहते हैं—

ते तमूचुर्महात्मानः पौरजानपदैः सह ॥

अर्थात् वहां मुख्य २ नागरिक तथा महात्मा लोग बैठे हुए थे, वे महाराज से बोले कि राजन् ! रामचन्द्र जी ने अपने गुणों से हमें मुग्ध किया हुआ है इस लिए आप रामचन्द्र जी को युवराज बनाइये । ये लोग अपने भाषण में कहते हैं—

आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा ॥

अर्थात् न केवल अयोध्या में परन्तु सारे राज्य में लोगों की यहि सम्मति है कि रामचन्द्र जी को राजा बनाया जाय । इस प्रकार

परिषद् की सम्मति से रामचन्द्र जी को युवराज बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत होजाता है।

इन उपर्युक्त वाक्यों को देख कर स्पष्ट हो जाता है कि प्रजा द्वारा ही रामचन्द्र जी को राजा चुना गया था। परन्तु अपनी पुष्टिके लिए हम दो एक प्रमाण और प्रस्तुत करते हैं।

रामायण के पठन से मालूम होता है कि भरत को युवराज बनाने के लिए भी कुछ Minority थी। उन्होंने बहुत यत्न किया था परन्तु बहु सम्मति के कारण उन की हार हुई। इस शंका को उत्पन्न करने वाले कई वाक्य रामायण में मिलते हैं। हम पूछते हैं कि दशरथ महाराज ने रामचन्द्र जी को इतना शीघ्र राज्यभिषेक क्यों देना चाहा? जिस दिन परिषद् ने उन को युवराज चुना उससे अगले दिन ही दशरथ ने उन का राज्यभिषेक करना चाहा था। दशरथ महाराज रामचन्द्र जी से कहते हैं कि हे पुत्र! मैं तुम को शीघ्र ही राज्यभिषेक देना चाहता हूं क्योंकि "मनुष्यों की सम्मति तो परिवर्तन शील है" इस से पता लगता है कि दशरथ महाराज को डर था कि कहीं भरत के लिये बहु सम्मति न हो जाय। एक अन्य स्थान पर तो दशरथ स्पष्ट कहते हैं—

विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥

वाल्मीकि अ० का० ४।२५॥

अर्थात् मैं चाहता हूं कि जब तक भरत अयोध्या में नहीं आता, उस से पहले ही तुम्हारा राज्याभिषेक हो जाय"। यही कारण प्रतीत

होता है कि दशरथ महाराज ने भरत को ऐसे उत्सव होने पर भी निमन्त्रण नहीं दिया । दशरथ डरते थे कि भरत के यहां होने से सम्भव है उस को बहुसम्मति मिलजाय । इस लिये उसकी अनुपस्थिति में ही उन्होंने यह प्रस्ताव पास कराया तथा राज्याभिषेक भी अगले ही दिन निश्चित करवा दिया । तो भी दशरथ को डर था कि जो भरत के पक्ष में हैं वे रामचन्द्र जी को कुछ शारीरिक क्षति न पहुंचायें; इस लिये वे राम से कहते:—

सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्त्वद्य समन्ततः ॥

आज तेरे मित्र बड़ी सावधानता पूर्वक चारों तरफ से तेरी रक्षा करें । यहां पर खास तौर से ऐसा कहने से मालूम होता है कि परिषद् के अन्दर भरत और रामचन्द्र जी के पक्ष वालों का खूब वाद विवाद हुआ था और बड़े झगड़े के पश्चात् रामचन्द्र जी का पक्ष विजयी हुआ था । इसी लिए कौशल्या ने जब परिषद् का निश्चय सुना तो वह अत्यन्त ही प्रसन्न हुई और सुवर्ण गौ तथा नानाविध रत्न बांटने लगी तथा जब रामचन्द्र जी आये तो उन से बोली—

वत्स राम ! चिरंजीव ! हतास्ते परिपन्थिनः ॥

अर्थात् प्यारे राम ! चिरंजीव हो । तेरे सब विरोधी मारे गये । इस का यही अर्थ है कि तेरे विरोधियों की खूब पराजय हुई । *

---

* कैकेयी से मन्थरा कहती है—

भरतादेव रामस्य राज्यसाधारणाद्भयम् ।
तद्विचिन्त्य विषण्णास्मि भयं भीताद्धि जायते ॥

वाल्मीकि अयोध्या काण्ड ८ सर्ग ५ श्लो०

इस लिये हमारा यह प्रबल सन्देह है कि रामचन्द्र जी के युवराज बनाने में दो पक्ष थे और दोनों पक्षों में बहुत वाद विवाद हुआ था। किन्तु वाल्मीकि ने इस घटना को इस लिये विस्तार से नहीं लिखा कि यह बात **रामचन्द्र जी** की सर्वप्रियता पर कुछ लांछन लगाने वाली थी। पाठक वर्ग ! चाहे यह आशंका ठीक हो चाहे भ्रम हो किन्तु यह स्पष्ट है कि रामचन्द्र जी प्रजा की सम्मति से ही राजसिंहासन पर बैठाये गये थे।

शायद यहां पर आशंका हो कि प्राचीन काल में राजा अपनी स्वतन्त्रता से जिस पुत्र को राज्य देना चाहता था, उसी को राज्य सिंहासन पर विठा देता था। कभी २ प्रजा की सलाह ले लेता था, परन्तु प्रजा उस को बाधित नहीं कर सकती थी। किन्तु यह आशंका सर्वथा निर्मूल है। राजा प्रजा से नियत किये हुये पुत्र को ही युवराज बनाने के लिये बाधित था। हम जानते हैं कि महाराज पुरु की यह प्रबल इच्छा थी कि उनका प्रिय पुत्र देवापि युवराज बनाया जाय परन्तु प्रजा इस के विरुद्ध थी। प्रजा नहीं चाहती थी कि देवापि युवराज हो। महर्षि व्यास कहते हैं:—

> **तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह।**
> **सर्वे निर्वारयामासुर्देवापेरभिषेचमम्** ॥ उद्योग १४८॥

अर्थात् जब राज्य ने देवापि को युवराज का बनाने का विचार प्रस्तुत किया तो ब्राह्मणों वृद्ध पुरुषों और प्रजा के मुखिया लोगों ने मिलकर इस का विरोध किया और उन्होंने कहा देवापि चर्मरोग से पीड़ित है, इस लिये उस में राजा से सर्वगुण नहीं है। महर्षि व्यास कहते हैं—

इतिकृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्येषधन् द्विजर्षभा ।

ऐसा कह कर उन्होंने राजा को ऐसा करने से रोक दिया । राजा की प्रबल इच्छा थी कि देवापि को ही युवराज बनाया जाय परन्तु जब उस ने प्रजा का यह निर्णय सुना तो महर्षि व्यास कहते हैं—

स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम् ।
अश्रुकण्ठोऽभव द्राजा पर्यशोचत चात्मजम् ॥

उसकी आंखों में आंसू आगये और उसका कण्ठरुद्ध होगया । परन्तु **पाठक वर्ग** ! उसे प्रजा की आज्ञा के सामने अपना प्रस्ताव लौटाना पड़ा । इस से स्पष्ट है कि प्रजा द्वारा युवराज की नियुक्ति होती थी और यदि प्रजा राजा के विरुद्ध भी नियुक्ति करती थी तो राजा उसे युवराज स्वीकार करने के लिए बाधित समझा जाता था ।

राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही युवराज हो सकता है यह कोई नियम नहीं था—दूसरी आशंका यह हो सकती है कि प्राचीन काल में सदा ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी समझा जाता था । इस लिये जब ज्येष्ठ पुत्र का यह जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता हो तो कैसे सम्भव है कि प्रजा ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर किसी दूसरे राजबंशीय पुरुष को युवराज बना सके । किन्तु हम यहां यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि "**ज्येष्ठ पुत्र ही राज्याधिकारी है**" यह प्राचीन राजनीतिशास्त्र का कोई नियम नहीं था । प्रत्युत प्राचीन राजनीति शास्त्र स्थान २

पर इस का विरोध करता है। इस के कुछ उदारहण हम पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं—

राजनीतिज्ञ चाणक्य का वाक्य इस विषय में अत्यन्त स्पष्ट है। इस लिये उस के वाक्य ही हम यहां दिखाते हैं। वह कहता है—

राजपुत्रमात्मसम्पन्नं राज्ये स्थापयेत् ॥

अर्थात् योग्यतम राजपुत्र ही सिंहासन पर बैठाया जा सकता है। तथा आगे वह कहता है कि यदि कोई भी राजपुत्र योग्य नहीं है तो महामात्य मिलकर विचार करें और जैसा उचित समझें वैसे ही किसी दूसरे को राजसिंहासन पर बिठाने का विचार करें। अथवा यदि कोई राजकन्या हो तो उस से किसी उत्तम क्षत्रिय से पुत्र उत्पन्न करवा कर उसे राजसिंहासन का अधिकारी निश्चित किया जाय *। किन्तु अयोग्य पुत्र को कभी भी सिंहासनारोहण का अधिकार नहीं। इस बात पर चाणक्य बहुत बल देता हुवा कहता है—

"न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत्" ॥

अर्थात् यदि राजा का एक ही पुत्र है और वह भी अविनीत है तो उसका कोई अधिकार नहीं कि वह राजसिंहासन पर बैठाया जा सके। अथवा यदि कोई राजपुत्री का पुत्र हो और वह योग्य हो तो उसे युवराज बनाया जाय। यदि यह भी नहीं हो तो किसी तुल्य गुण सामन्त से राजमाता में पुत्र उत्पन्न कराया जाय और उस के योग्य होने पर उसे युवराज बनाया जाय।

---

* **कन्यायां समानजातीयाद् उत्पाद्य वाभिषिञ्चेत्।**

राजनीतिज्ञ चाणक्य के उपर्युक्त वाक्यों को देख कर निश्चय होता है कि राजकुल में उत्पन्न हुए किसी योग्यतम पुरुष को ही राज सिंहासन पर बिठाया जाता था। राजनीति शास्त्र के रहस्य के परम विज्ञाता व्यास भगवान् भी यही लिखते हैं कि ज्येष्ठ पुत्र यदि अयोग्य है तो वह राजसिंहासन पर नहीं बैठाया जा सकता। वे इस विषय में ययाति राजा का इतिहास सुनाते हैं। महाराज ययाति का ज्येष्ठ पुत्र यदु था वह अत्यन्त बलवान् और वीर्यवान् था परन्तु उस ने अभिमान वश होकर न केवल समस्त क्षत्रियों का ही अपमान किया किन्तु अपने पिता तथा भाईयों की आज्ञा का उल्लंघन कर उन का भी घोर अपमान किया इस लिये उसे युवराज पद से च्युत कर दिया गया और ययाति के कनिष्ठ पुत्र पुरु को जो बड़ा ही निःस्वार्थी परोपकारी और विनीत था प्रजा ने राज्यसिंहासन पर बिठा दिया। प्रजाओं ने कहा—

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि सत्तमः॥
अर्हः पुरुरिदं राज्यं यः सुतः प्रियकृत्तव।

आदि ८४। ३१॥

अर्थात् हे राजन्! जो पुत्र गुणों से सम्पन्न है और माता पिता का हित करने वाला है चाहे वह छोटा भी क्यों न हो वही राज्याधिकारी है। इस लिये छोटे राजपुत्र पुरु को ही राज्य दिया जाय। इस इतिहास को दिखाकर व्यास भगवान् जो निश्चय करते हैं उसको हम उन्हीं के वाक्यों में दिखाना चाहते हैं—

**एवं ज्येष्ठो ह्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते ।
यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥**

उद्योग १४७ । १३ ॥

यदि ज्येष्ठ पुत्र अभिमानी है तो उसको राजसिंहासन नहीं दिया जाता किन्तु कनिष्ठ पुत्र यदि विनीत है तो उसे ही राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया जाता है ।

व्यास भगवान् के उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट है कि ज्येष्ठ पुत्र होने से किसी को राज्याधिकारी नहीं समझा जाता था किन्तु सर्वगुण सम्पन्न होने से ही राज्याधिकारी समझा जाता था । कौन गुण सम्पन्न है इसका भी निर्णय राजा के हाथ में नहीं था किन्तु प्रजा के हाथ में था । इसी लिए राजा ययाति प्रजा के प्रतिनिधि पुरुषों के सन्मुख आकर कहते हैं कि—

भवतोऽनुनयाम्येवं पुरू राज्येऽभिषिच्यताम् ।

आदि ८४ । २९ ॥

अर्थात् मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूं कि पुरु योग्य है इस लिये आप उसका ही अभिषेक कीजिए । इस पर प्रजा विचार करके पुरु को युवराज चुनती है । इस से प्रतीत होता है कि योग्यायोग्य का निर्णय भी प्रजा ही करती थी ।

हम यहां यह बड़े बल से सिद्ध करना चाहते हैं कि प्राचीन राजनीतिज्ञों का यह कोई नियम नहीं था कि ज्येष्ठ पुत्र को ही युवराज बनाया जाय । प्राचीन समय में तो यह माना जाता था कि यदि ज्येष्ठ पुत्र दुष्ट है तो केवल वह राजपद से च्युत ही नहीं किया जाता परन्तु

उसे देश निर्वासन का बड़े से बड़ा दण्ड भी दिया जा सकता था।

प्राचीन इतिहास से थोड़ा सा भी परिचय रखने वाला कौन व्यक्ति **असमञ्जस** की भयानक कथा को नहीं जानता । असमञ्जस राजा का ज्येष्ठ पुत्र था ज्येष्ठ पुत्र होने से उसका युवराज बनने का कुछ अधिकार हो सकता था किन्तु प्रजा के प्रतिनिधियों ने राजा से जोरदार शब्दों में आग्रह के साथ कहा कि राजन्! या तो हम ही तुम्हारी प्रजा रह सकती हैं या असमञ्जस ही तुम्हारी प्रजा बन कर रहे। हम दोनों में से आप जिस को चाहते हैं उसको रख लें। राजा ने कहा प्रजागण! स्पष्ट कहिये क्या बात है उन्होंने कहा कि "राजन्, असमञ्जस अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी है वह प्रजा के छोटे २ बालकों को अपने खेल और आनन्द के लिए सरयू में फिकवाता है।" प्रजा की इस शिकायत पर पाठकगण! राजा के सब से बड़े और प्रिय पुत्र को जन्मभर का देश निकाला दिया जाता है। जरा वह अवस्था विचारने योग्य है कि एक राजकुमार और सब से बड़ा राजकुमार जिसको अभी युवराज बनाया जा सकता था एक पिटारी और कुदाल लेकर फटे हुए पुराने कपड़े पहन कर पर्वतों में मारा २ भटकने के लिए अपनी भार्या और संबन्धियों के साथ देश से बाहर निकाला जा रहा है। क्या समस्त भूमण्डल के किसी देश के इतिहास के अन्दर इस प्रकार की घटना मिल सकती है ? क्या आज सभ्य देशों के अन्दर जहां अभिमान से कहा जाता है कि वहां प्रजा को पूर्ण अधिकार है इस प्रकार का दृश्य देखा जासकता है ? इस लिए कौन विचारवान् पुरुष होगा जो कहेगा कि प्राचीन काल में ज्येष्ठ पुत्र होने से ही किसी को युवराज बना

लिया जाता था। असमञ्जस को युवराज पद से च्युत करके राजा के कनिष्ठ पुत्र को प्रजा ने राज्याभिषेक दिया * इस लिए कौन कह सकता है कि ज्येष्ठ पुत्र को ही युवराज बनाया जा सकता था।

इस के अतिरिक्त महाभारत का पढ़ने वाला कौन नहीं जानता कि चन्द्र वंश के सिंहासन पर राजा के ज्येष्ठ पुत्र धृतराष्ट्र को सिंहासन पर नहीं बिठाया गया था केवल इस लिए कि वह नेत्रविहीन था किन्तु उस के स्थान पर कनिष्ठ पुत्र पाण्डु को राज्याधिकारी बनाया गया +।

इस लिये हमारा निश्चय है कि प्राचीन समय में यह कोई नियम नहीं था कि ज्येष्ठ पुत्र को ही युवराज बनाया जाय प्रत्युत राजकुल में उत्पन्न हुआ जो योग्य पुत्र होता था उसी को राजसिंहासन दिया जाता था। किन्तु जब कोई भी राजवंश में नहीं मिल सकता था तो सारे देश में जो योग्य से योग्य व्यक्ति मिल सकता था उसी को राजा बनाया जाता था। यह स्थापना हम अपनी कल्पना से नहीं कर रहे हैं किन्तु इस के लिये ग्रीस का प्रसिद्ध ऐतिहासिक एरियन भी हमारा साक्षी है। वह कहता है कि जब "राजवंश में कोई युवराज बनाने के लिये नहीं मिल सकता था तो आर्यावर्तीय लोग किसी योग्यतम व्यक्ति को राज पद के

---

* वाल्मीकि रामायण। अयोध्याकाण्ड। ३६ सर्ग।

\+ ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनांग इति भारत।
पाण्डुस्तु राज्यं संप्राप्तः कनीयानपि स नृपः॥

उद्योगपर्व। १४८। २९।

लिये चुन लेते थे"। इस विदेशीय विद्वान् की सम्मति से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि राजा का चुनना प्रजा के हाथ में ही था।

स्त्रियें भी राजसिंहासन पर बैठ सकती थीं उन को भी राजा चुना जा सकता था:—यहां पर संक्षेप से यह कहना भी कोई अप्राकरणिक न होगा कि राजकुल में न केवल योग्य पुरुषों को ही राजसिंहासन के लिये चुना जाता था किन्तु योग्य महिलाओं को भी राजा बनाया जा सकता था। यह तो वसिष्ठ ने कहा था कि रामचन्द्र की अनुपस्थिति में सिंहासनारोहण करने का दूसरा अधिकार जानकी जी का है उन्होंने कहा था कि—

अनुष्ठास्यति रामस्य सीतया प्रकृतमासनम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्॥
३७ सर्ग॥

अर्थात् रामचन्द्र जी के बाद सिंहासन पर अब अधिरोहण करने का अधिकार सीता जी का है वे ही सिंहासन पर बैठकर अब पृथ्वी पर शासन करेंगी।

इस के अतिरिक्त महाभारत में हम पाते हैं कि जब महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के पहले समस्त देशों का विजय कर लेते हैं तो व्यास भगवान् उन से कहते हैं कि युधिष्ठिर! जिन देशों के राजा तुम्हारे साथ युद्ध में मारे गये हैं उन देशों में जाओ और उनके राजकुलों

---

* But that when a failure of heirs occured in the royal house the Indian elected their sovereigns on the principe of merits. **ऐरियन २०० पृष्ठ।**

में मृत राजाओं के भाई पुत्र तथा पौत्र जो भी योग्य मिल सकें उनका अभिषेक कराओ किन्तु ध्यान रखना कि सब प्रजा तुम से प्रसन्न रहे। यदि किसी कुल में राजकुमार न हो तो वहां राजकन्याओं को सिंहासन पर बिठा कर अभिषेक कराओ *।

पाठकवर्ग! महर्षि व्यास के इस आदेश से मुख्यतः दो बातें पता लगती हैं एक तो प्राचीन काल में कन्याओं का राज्याभिषेक हो सकता था। दूसरा यह कि युधिष्ठिर जैसे विजयी सम्राट् का भी यह अधिकार नहीं था कि वह अपने विजित राष्ट्रों की प्रजा की स्वतन्त्रता का हरण कर सके। उसका अधिकार नहीं था कि उन देशों के राजशून्य सिंहासनों पर अपने मनमाने पुरुषों को राजा आघोषित करके बिठा सके अपितु उसे भी वहां की प्रजा की सम्मति के अनुसार वहीं के राजकुलोत्पन्न किसी पुरुष को राजा बनाना पड़ता था। इसके अतिरिक्त काश्मीर का इतिहास जानने वाले जानते हैं कि वहां सुगन्धा और दिद्दा नाम की दो रानियां सिंहासन पर बैठीं थीं। तथा सीलोन में तो बहुत सी स्त्रिया राज सिंहासन पर बैठ चुकी हैं महावंश के इतिहास के अनुसार लीला-

---

* तेषां पुराणि राष्ट्राणि गत्वा राजन् सुहृद्वृतः।
भ्रातॄन्पुत्रान्श्च पौत्रान्श्च स्वे स्वे राज्येभिषेचय॥
बालानपि च मार्गस्थान् सान्त्वेन समुदाचरन्।
रञ्जयन् प्रकृतीः सर्वाः परि पाहि वसुन्धराम्॥
कुमारो नास्ति येषांञ्च कन्यास्तत्राभिषेचय।
एवमाश्वसनं कृत्वा सर्वराष्ट्रेषु भारत॥
यजस्व वाजिमेधेन यथेन्द्रोविजयीपुरा॥

४८ अ०। ४२-४५ शान्तिपर्व

बती नामक एक महिला ने चिरकाल तक वहां शासन किया। उसके अतिरिक्त प्रमथनाथ बैनर्जी के कथनानुसार अनुला, सिवली और कल्याणवती नाम की तीन स्त्रियां वहां शासन कर चुकी हैं। पाण्ड्य देश के विषय में मैगस्थनीज़ लिखता है कि वहां तो सदा स्त्री ही राज्ञी बनकर शासन किया करतीं थीं। इस प्रकार सिद्ध होता है कि राजकुल में न केवल योग्यतम राजकुमार को ही युवराज बनाया जाता था किन्तु योग्यतम कुमारियों को भी युवराज बनाया जा सकता था। उपर्युक्त सारे कथन का अभिप्राय यही है कि ज्येष्ठ पुत्र को ही युवराज बनाया जाय यह कोई प्राचीन समय में नियम नहीं था। अतः उपर्युक्त स्थापना कि राजा प्रजा की ओर से ही नियुक्त होता था किसी प्रकार से भी खण्डित नहीं हो सकती। अब हम इसी स्थापना की पुष्टि के लिये दो एक और उदाहरण देकर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे।

महाभारत में कथा आती है कि विचित्रवीर्य के रोगग्रस्त होकर मरने पर राजा कोई नहीं रहा और सिंहासन खाली होगया। इस प्रकार राष्ट्र के अराजक होने पर वहां की प्रजायें भूख और भय से व्याकुल होगई। इस लिये अन्त में प्रजा की ओर से भीष्म पितामह से प्रार्थना की गई कि हे शन्तनु के कुल को बढ़ाने वाले! हमारे भयों को हटाने के लिये तथा हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये हमारे राजा बनना स्वीकार करो, हे गंगापुत्र! सारी प्रजायें अत्यन्त भयानक रोगों से पीड़ित हैं उनका परित्राण एकमात्र आप ही कर सकते हो, हे वीर तुम राजा बनकर प्रजाओं की रक्षा करो कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे रहते २ हमारा राष्ट्र विनष्ट हो जाय।

परन्तु दृढ़ चित्त भीष्म पितामह का मन प्रजाओं के इस आर्तनाद से नहीं हिला। इस पर बहुत से प्रजा के सर्व साधारण लोग राज कर्मचारी पुरोहित आचार्य तथा बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण भीष्म पितामह के पास पहुंचे और बोले कि महाराज हम आप से प्रार्थना करते हैं कि आप राष्ट्र के हित के लिये राजा बनना स्वीकार कीजिये *। पाठक वर्ग! चाहे भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञावश हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से इस प्रार्थना को अस्वीकार किया परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि प्रजा की ओर से ही भीष्म पितामह को राजसिंहासन पर बिठाया जारहा था।

इसी प्रकार युधिष्ठिर का जब सिंहासन पर अभिषेक होता है तो व्यास कहते हैं कि सब प्रजाओं की ओर से ही उन्हें सिंहासन दिया गया। प्रजा के बड़े २ विद्वान पुरुष एकत्रित हुए और उन्होंने युधिष्ठिर को कहा कि आप हमारे राजा हूजिए और प्रजाओं की न्याय तथा धर्म से रक्षा करते हुए सौ वर्ष तक राज्य कीजिए" +।

---

* उपक्षीणाः प्रजाः सर्वाः राजा भव भयाय नः।
इति प्रणुद भद्रं ते शान्तनोः कुलवर्धन ॥ १४७। २६।
उद्योग पर्व ॥

ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा।
भृत्या पुरोहिता चार्या ब्राह्मणाश्च वहुश्रुताः ॥
मामुचुर्भृशसन्तप्ता भव राजेति संततम् ॥ ३० श्लोक ॥
स त्वमस्मद्धितार्थं वै राजा भव महामते ॥ ३१ श्लोक ॥

\+ भव नस्त्वं महाराज राज हे शरदी शतम।
प्रजाः पालय धर्मेण यथेन्द्र स्त्रिदिव स्तथा ॥ ४८ अ०। शान्ति॥

पाठक वर्ग ! नगरों के बाज़ारों गलियों तथा नाना स्थानों पर सभायें करके सर्वसाधारण प्रजा के लोग जब राजा का चुनाव करते थे उस समय की उनकी स्वतन्त्रता की क्षण भर कल्पना कीजिये । जिस समय खुले बाज़ारों में लोग इकट्ठे होकर राजवंश में उत्पन्न हुए २ नाना पुत्रों की खुली समालोचना करते होंगे उस समय की उनकी स्वतन्त्रता का मनोहर चित्र अपने सन्मुख लाइये । इसी प्रकार का एक चित्र हम आपके सामने प्रस्तुत कहते हैं ।

महाराज पाण्डु की मृत्यु पर इन्द्रप्रस्थ का राजसिंहासन खाली हो जाता है अब भारत का सम्राट् कौन बने यह विषय प्रजा के सन्मुख आता है । पाण्डु के पुत्रों तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों में से कौन राज शासन करने के योग्य हैं इस बात की चर्चा करने के लिये खुले बाज़ारों में सर्वसाधारण लोगों की सभायें होती हैं आश्चर्य से सुनना पड़ता है कि प्रजावासी लोग पूर्णस्वतन्त्रता से पाण्डवों और कौरवों के गुणावगुणों की समालोचना करते हैं । उन को लेश भर भी धृतराष्ट्र तथा उन के पुत्र दुर्योधन आदि की समालोचना करने में भय मालूम नहीं होता परन्तु इस के विपरीत धृतराष्ट्र और दुर्योधन जैसे सम्राट् भी उनकी समालोचना सुन कर हृदय में जलने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर सकते थे । किन स्वतन्त्रता पूर्ण तथा साहसिक शब्दों में लोग समालोचना कर रहे थे उनको हम भगवान् व्यास के शब्दो में ही संक्षेप से सुनाते हैं । व्यास कहते हैं कि प्रजा के लोग अनेकानेक चौराहों और सभाओं में इकट्ठे होकर विवाद करने लगे कि धृतराष्ट्र नेत्रहीन होने के कारण महाराज पाण्डु से पहले राज्य से वञ्चित किये गये थे इस लिये उन का अब भी अधिकार नहीं कि वे राजसिंहासन पर

बैठ सकें। शेष रहे भीष्म पितामह वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि वे राज्य को स्वीकार नहीं करेंगे इस लिये निश्चय है कि वे अब भी कभी राज्य को अंगीकार न करेंगे । इसके बाद व्यास कहते हैं कि उन्होंने पाण्डवों के अलौकिक गुणों की बहुत २ प्रशंसा की और फिर सब ने निश्चय किया ।

ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम् ।
अभ्याषिञ्चाम साध्वद्य सत्यकारुण्य वेदिनम् ॥ २७ ॥

अर्थात् "हम लोग वृद्धों के समान शील वाले सत्यवादी करुणा दिखाने वाले और वेद के जानने वाले पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राज सिंहासन पर बिठा कर अभिषेक करें" । हमें निश्चय है कि युधिष्ठिर महाराज होकर भी भीष्म पितामह धृतराष्ट्र और उस के पुत्र दुर्योधनादि को सुखी रखने का पूर्ण यत्न करेगा ।

आगे व्यास भगवान् कहते हैं कि लोगों की इस प्रकार की समालोचना सुनकर दुर्योधन हृदय में जलने लगा और ईर्ष्या से सन्तप्त हुआ २ उनकी समालोचनाओं को न सह सका इस लिए वह अपने पिता धृतराष्ट्र के पास गया और उनको अकेला पाकर उसने कहा ।

श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः ।
त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम् ॥ ३२॥

अर्थात् "हे पिता प्रजा वासियों की कठोर वाणियां सुनकर मेरा हृदय सन्तप्त हो गया है वे लोग आपका तथा भीष्म पितामह का भी अनादर कर के पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर को राज सिंहासन पर बिठाना

चाहते हैं।" इसलिये मेरा निवेदन है कि पाण्डवों को शीघ्र ही यहां से बाहर करके वारणावत नगर में भेज दिया जाय। इस पर जो वचन धृतराष्ट्र ने कहा वह सुनने योग्य हैं। उन्होंने कहा हे पुत्र! पाण्डु से सभी प्रजायें सन्तुष्ट हैं यदि हमने पाण्डवों को कुछ भी हानि पहुंचाई तो क्रुद्ध हुए २ प्रजा के लोग बन्धु बान्धवों सहित हम को नष्ट कर सकते हैं *। इस से स्पष्ट है कि प्रजा की सम्मति के विरुद्ध करने का साहस महाराज धृतराष्ट्र में भी नहीं था।

---

* गुणैः समुदितान्दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा।
कथयांचक्रिरे तेषां गुणान्संसत्सु भारत॥ २३॥
राज्य प्राप्तिं च सम्प्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा।
कथयन्ति स सम्भूय चत्वरेषु सभासु च॥ २४॥
प्रज्ञाचक्षु रिति श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
राज्यं न प्राप्तवान्पूर्वं स कथं नृपति र्भवेत्॥ २५॥
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसन्धो महाव्रतः।
प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु गृहीष्यति॥ २६॥
स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित्।
सपुत्रं विविधै र्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन्॥ २७॥
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम्।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः॥ २८॥
स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे।
ईर्ष्यया चापि सन्तप्तो धृतराष्ट्र मुपागमत्॥ ३०॥
अस्माकं तु परां पीड़ां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः॥ ३३॥
आदिपर्व। १४१। २३। से आगे।

उपर्युक्त प्रकार के अनेक दृष्टान्त इतिहास से दिखाये जा सकते हैं जिनसे स्पष्ट होजाता है कि प्रजा के लोग सिंहासन पर बिठाने के लिये राजा को स्वयं चुनते थे और पूर्ण स्वतन्त्रता से चुनते थे। बड़े बड़े शक्तिशाली राजवंशियों को उन की सम्मति के सामने सिर झुकाना पड़ता था।

दूर जाने की आवश्यकता नहीं अभी बहुत समय नहीं हुआ कि दक्षिण भारत के मालाबार देश में प्रजा द्वारा राजा को चुना जाता रहा है। प्रत्येक १२ वर्ष के बाद पुराने राजा के स्थान पर नये राजा को चुनने के लिये एक बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता था। इस उत्सव के दिन को महामखम का दिन कहा जाता था अर्थात् जिस दिन बड़ा भारी यज्ञ होता था और पुराने राजा के स्थान पर नवीन राजा को चुना जाता था। इस उत्सव का आरम्भ पिरूमाल राजाओं के समय से हुआ §। जब अन्तिम सम्राट् चिरामान पिरूमाल ८२७ ईस्वी में अपने राज्य को छोडकर मक्का चला गया और वहां जाकर मुसलमान हो गया तो इस उत्सव के मनाने का काम अरांगोट राजा के हाथों में आगया क्योंकि उस के देश की सीमा में ही यह उत्सव सदा मनाया जाता था। इन राजाओं ने १२, और १३ शताब्दी ईस्वी तक इस उत्सव को जारी रखा जब कीजमेरिन राजाओं की शक्ति बहुत बढ़ गई और वे ही सारे केवल देश के सम्राट् होगये परन्तु उन के समय

§ The tradition is that this festival of Mah amakham day that is literally the day of great sacrefice and of election every twelfth yeer was instituted in the days of the emperors. (colled peromals) Malabar gozeteer Page 165 का उद्धरण Self—government is India vedic and past vedic नामक ग्रन्थ में Paygce ने दिया है पृ० १८८।

भी यह उत्सव जारी रहा और १७४३ ईस्वी तक उन्होंने इस उत्सव को मनाया केवल १२ वर्ष तक ही एक राजा राज्य कर सकता था । अवधि के बाद यह उत्सव मनाया जाता था और उस के स्थान पर नये राजा को चुना जाता था † ।

इसकी पुष्टि के लिये एक प्रबल साक्षी भी मिलती है । १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में हेमिल्टन उपरोक्त राजा के चुनाव के उत्सव के विषय में लिखता हुआ कहता है "It was an ancient custom for the Samorin to reign but twelve years and nolongnr. अर्थात जमेरिन राजाओं में यह पुरानी प्रणाली है कि केवल १२ वर्ष तक ही राज्य करते हैं । इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मालावार पिरूमाल राजाओं से आरम्भ कर के (८२५ ई० से पहले) जमेरिन राजाओं तक यह उत्सव जारी रहा जो कि नये राजा के चुनाव के लिये ही मनाया जाता था । इस लिऐ राजा के चुनाव करने वाले नायक लोगों की राजसभा में यह शक्ति थी । अगले अध्याय के पढ़ने से पता लगेगा कि राजसभा में बड़ी शक्ति थी कि यदि उनकी दृष्टि में राजा की आज्ञा अनुचित होती थी तो वे

---

† "From this time down to the last celibration of the festival in 1743, the Zamarins were present of this festival as Zamerins of all keralam including travankore which as a malayali state only attained to the first rank shortly after the date of the lost Mahamakhom festival in 1743,, self governement in India **"मालाबार गजटीयर" का उद्धरण १८८ पृष्ठ पर दिया है ।**

उसको कार्य में परिणत नहीं होने देते थे और यदि राजमन्त्रि भी नियम विरुद्ध कोई कार्य करते थे तो उन्हें भी दण्ड देसकते थे। अस्तु यहां यह दिखाने का हमारा यही प्रयोजन है कि मालाबार का **महामखम** का उत्सव इस बात का प्रबल प्रमाण है कि प्राचीन भारत में यह माना जाता था कि कोई भी राजा राजसिंहासन पर तब तक बैठ नहीं सकता जब तक प्रजा ने उसको अनुमति न देदी हो।

इसी प्रकार इतिहास से पता लगता है कि पल्लव जाति में ७२० ई० में नन्दिवर्मन को राज मिला। परन्तु यह निश्चित बात है कि पिछले राजा नरसिंह वर्मन का वह लड़का नहीं था। यह ऐसा परीवर्तन क्यों हुआ! इस प्रश्न का उत्तर भारत का इतिहास लेखक विन्सेन्ट स्मिथ भी यही देता है कि कहा जाता है कि सर्वसाधारण लोगों ने नंदिवर्मन को ही राजा चुना था इसलिये पिछले राजा के पुत्र के स्थान पर वही सिंहासन का उत्तराधिकारी हुआ ‡।

इस के अतिरिक्त महाराज हर्षवर्धन का उदाहरण हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि वह भी चुनाव द्वारा ही राजसिंहासन पर बैठाया गया था। विन्सेन्ट स्मिथ भी स्वीकार करता है कि जन्म सिद्ध अधिकार से वह राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता था इस लिये राज्य के बड़े २ सरदारों द्वारा चुना जाकर ही वह राज सिंहासनासीन हुआ था। +

---

† Self Government in India vedic and past vedic. by N. B. Paygee.

‡ "The change in line of succession is stated to (189 Page) have been the result of a popular election.'' (Ealy history of India, second edition, Page 427) N. B. Paygce **अपनी पुस्तक के १६४ पृष्ठ पर इसी का उद्धरण देते हैं।**

+ Early history of India, second Edition. (311, 312 Page)

इस प्रकार अनेक ऐतिहासिक उदाहरण इस बात की साक्षी हैं कि प्राचीन भारत में राजा की नियुक्ति प्रजा के हाथों में थी। प्रजा की सम्मति के विरुद्ध कोई राजसिंहासन स्वीकार नहीं कर सकता था। इस लिए इतनी बलवती प्रजा को यह कहना कि वह प्राचीन काल में राज्य के सब अधिकारों से वञ्चित थी और मन माने तौर से शासन करने वाले वंशक्रमागत राजाओं से शासित होने वाली थी यदि अपनी घोर ऐतिहासिक अज्ञानता का प्रगट करना नहीं तो और क्या है ?

पञ्चम युक्ति

"राजकर्त्ता" शब्द पर विचार:—प्राचीन समय में राजा को चुना जाता था, इस विषय की पुष्टि में हम एक और प्रबल प्रमाण दिखाना चाहते हैं। प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में "राजकर्ता" यह शब्द अनेक स्थानों पर पाया जाता है। जहां २ अभिषेक का विषय पाया जाता है वहां राजकर्ता शब्द का मिलना अवश्य ही किसी गम्भीर आशय को सिद्ध करता है। मामूली हिन्दी जानने वाला भी कह सकता है कि राजकर्ता शब्द का अर्थ है "राजा को बनाने वाला"। अतः इस शब्द मात्र की एक बड़ी साक्षी है कि राजा स्वयं नहीं बनता था परन्तु बनाया जाता था। प्राचीन समय में नियम था कि सारे राष्ट्र के प्रतिनिधि भूत कुछ एक

---

* **ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डवा नागरा जनाः।**
कथं युधिष्ठिरस्यार्थे नवो हन्युः स बांधवान्॥ १४२। १३। आदि
तथा आगे धृतराष्ट्र कहते हैं कि ऐसा करने से
ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम्।
कथं न बध्यतां तात गच्छाम जगतस्तथा॥ १४२। १६॥

बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण होते थे जो सारे राष्ट्र की ओर से राजा को अभिषेक देकर उसे सिंहासन पर बिठाते थे । इन्हीं को राजकर्ता कहा जाता था । जब महाराज दशरथ का देहान्त हो गया और भारतवर्ष का सिंहासन शून्य हो गया उससे अगले दिन ही बाल्मीकि कहते हैं कि अयोध्या के सभाभवन में यह निश्चय करने के लिये कि किस को राजा बनाया जाय वहां "राजकर्ता" लोग इकट्ठे हुए। वाल्मीकि के कथन से पता लगता है कि महाराज दशरथ के समय मार्कण्डेय, मौद्गल्य, बामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और जाबालि ये सात महाविद्वान् ऋषि राजकर्ता पद को सुशोभित करते थे । और उन्होंने राज पुरोहित ऋषि वसिष्ठ के साथ विचार कर निश्चय किया कि—

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम्।
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्॥ ८॥

अर्थात् राजा के न होने से हमारा राष्ट्र नष्ट न हो जाय इस लिये हमें उचित है कि इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए किसी को आज ही राजा बनायें" × । इस से स्पष्ट है कि राजा को नियत करने वाले ही राजकर्ता शब्द से कहे जाते थे । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राजकर्ता शब्द मन्त्रियों का वाचक नहीं है क्योंकि रामायण के

× व्यतीतायां तु शर्वर्या मादित्यस्योदये ततः ।
समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥
मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः ।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ॥

अयोध्या० । ६७ । २, ३॥

समय मन्त्रि पद पर अन्य आठ महानुभाव नियत थे जो इन उपर्युक्त सात विद्वानों से सर्वथा पृथक् थे।

इन उपरोक्त सात राजकर्ताओं + ने ही महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया के बाद भरत से राजसभा में एकत्रित होकर कहा था कि—

त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र! महायशः॥

हे राजपुत्र पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये रामचन्द्र राज्य छोड़ बन को चले गये अब आप हमारे दिये हुए राज पद को स्वीकार कीजिये। राष्ट्र की भिन्न २ श्रेणियों के पुरुष अब तुम्हें अभिषेक देना चाहते हैं"।

इस प्रकार स्थान २ पर राजकर्ता शब्द के प्रयोग से पता लगता है कि सर्वसाधारण लोगों की सम्मति के अनुसार जो राजा को चुनते और सिंहासनाभिषेक करते थे वे राजकर्ता नाम से पुकारे जाते थे।

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण के अभिषेक प्रकरण में भी राजकर्ता लोगों के विषय में बहुत कुछ पता लगता है वहां लिखा है कि जब चुना हुआ राजा सिंहासन पर बैठे तब राजकर्ता लोग कहें कि जब तक हम लोग उच्चध्वनि' से राजा के सन्मुख खुशी और हर्ष प्रकट नहीं करते हैं तब तक राजा के अन्दर उत्साह उत्पन्न नहीं होता इस लिये हम लोग आज राजा की राज्य प्राप्ति के उपलक्ष्य में उल्लास

+ ततः प्रभात समये दिवसेऽथ चतुर्दशे।
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्य मब्रुवन्॥

से खुशी मनाते हैं जब राजकर्ता लोग खुशी मनाते हैं तब शेष लोग भी राजा की ओर मुख करके खुशी मनाते हैं * ।

ऐतरेय ब्राह्मण के अतिरिक्त वेद के अभिषेक प्रकरण में भी राजकर्ता शब्द मिलता है । अभिषेक प्रकरण में राजा के सन्मुख कौन २ आते हैं उनका नाम लिखते हुए वेद कहता है ।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये + ।

अर्थात् माण्डलिक राजा, राजकर्ता लोग, सूत, तथा समूहों के नायक लोग सब वहां आते हैं । यहां हमारा इस वाक्य को दिखाने का केवल इतना अभिप्राय है कि वेद के अभिषेक प्रकरण से भी पता लगता है कि वैदिक समय में राजकर्ता लोग होते थे जो कि प्रजा की सम्मत्यनुसार राजा को सिंहासन पर बिठाते और उसका अभिषेक करते थे ।

इसी प्रकार प्राचीन साहित्य में स्थान २ पर राजकर्ता शब्द देख कर दृढ़ निश्चय होता है कि राजा स्वयं नहीं बनता था पर बनाया जाता था ।

विदेशियों की सम्मतिः—इन स्वदेशीय ऐतिहासिकों की सम्मति से ही केवल हम अपनी स्थापना को सिद्ध नहीं करते हैं अपि तु विदेशीय ऐतिहासिकों की सम्मतियां भी दर्शाते हैं ।

---

* तमेतस्यामासन्द्यामासीनं राजकर्तारो ब्रूयुर्नवा ।
अनभ्युत्कृष्टः क्षत्रियो वीर्यं कर्तुमर्हत्यभ्येन मुत्क्रोशामेति
तथेति तं राजकर्तारोऽभ्युत्क्रोशन्तीमं जना अभ्युत्क्रोशत ॥
ऐतरेय अभिषेक प्रकरण ।

\+ अथर्व । ३ । १ । ५ ।

एन्टिक्विटि आफ् इण्डिया नामक पुस्तक में बारनेट साहब लिखते हैं कि प्राचीन भारत में प्रजा के स्वतन्त्र मनुष्यों की एक सभा द्वारा राजा का चुनाव होता था * ।

हिविट अननी प्रिमिटिव ट्रैडीशनल हिस्टरी में इस बात को और भी अधिक स्पष्ट कहता है । वह कहता है कि "राजा सभी जातियों द्वारा चुने जाते थे तथा वे बाधित थे कि जो समाजिक सम्मति है उसी के अनुसार वे राजकार्य करें ‡ ।

पाठकवर्ग ! इस से अधिक ज़ोरदार शब्दों में तो हमने भी ऊपर इसी बात की स्थापना नहीं की जितनी यह करते हैं ।

इसी प्रकरण में लिखता हुआ हिविट एक वाक्य और लिखता है कि सिंहासन पर बैठने का अधिकार सर्वसाधारण की सम्मति पर ही निर्भर था † ।

इनके अतिरिक्त मोनियर विलियम अपनी पुस्तक "हिन्दूइज्म" में मनुस्मृति के विषय में लिखता हुआ कहता है कि मनुस्मृति के

---

* He was elected at least nomenally by the assembly of free men. [Antiquity of India Cha 3. by Barnett.]

‡ They were accepted Kings by the indeginous races who proceeded them, and that they were practically through out their reigns bound to confarm to public openion. [Primitiue traditional history by Hewet 124 Page].

† The right to the throne thus rests on popular consent.

सप्तम अध्याय में मुख्यतः क्षत्रिय कहाने वाली श्रेणी में से ही राजा चुना जाता था ×।"

प्रजा राजा को सिंहासन से च्युत कर सकती थी:— इस प्रकार स्वदेशीय और विदेशीय ऐतिहासिकों की सम्मतियां दिखाकर अब तक हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि प्राचीन काल में राजा प्रजा की ओर से नियुक्त किया जाता था। किन्तु यहां एक शंका रह सकती है कि यदि राजा प्रजा की ओर से ही बनाया जाता था तो क्या प्रजा का अधिकार था कि वह राजा को सिंहासन से च्युत कर सके। इस पर हमारा उत्तर यही है कि हां, प्रजा का पूर्ण अधिकार था कि जब राजा मर्यादा का उल्लंघन करने लगे प्रजा उस को सिंहासन से उतार दे। इस की सिद्धि के लिये कुछ साक्षियां देकर हम इस परिच्छेद को यहीं समाप्त करेंगे।

मनु कहते हैं कि जो राजा मोह वश होकर राष्ट्र को सताता है, वह न केवल राज्य से ही च्युत कर दिया जाता है, परन्तु प्राणों से भी वियुक्त कर दिया जाता है। तथा आगे वे कहते हैं कि जिस प्रकार शरीर को कष्ट देने से प्राण बाहर निकलने लगते हैं। उसी प्रकार राष्ट्र को पीड़ा देने वाले राजा के प्राण बाहर निकलने लगते हैं *। इस का तात्पर्य यह है कि यदि राजा राष्ट्र को दुःख देने वाला है

× The seventh and eightth proposed the rules of government, pricipally of course for the guidance of the second great class or kshatriya, from which the King was chosen.

* मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥

मनु ७। १११। ११२॥

तो राष्ट्र उस को सिंहासन से पदच्युत कर सकता है । शुक्राचार्य कहते हैं कि जो राजा कुटिल है वह शीघ्र ही राजसिंहासन से उतारा जाता है + । तथा दूसरे स्थान पर वे कहते हैं कि राजा द्वारा प्रजा को जो सन्ताप होता है वह सन्ताप राजा को सपरिवार नष्ट कर देता है × । राजा को किस प्रकार सिंहासन से च्युत करना चाहिये, इस के लिये शुक्राचार्य कहते हैं कि पुरोहित का काम है कि वह प्रजा की सम्मत्यनुसार ऐसे राष्ट्र विनाशक राजा को सिंहासन से उतार दे तथा प्रजा की सम्मति से किसी दूसरे राजकुल में उत्पन्न हुये गुण युक्त पुरुष को राजसिंहासन पर बिठा दे ÷ ।

इसी प्रकार ठीक उपर्युक्त मनु के वाक्यों को लेकर अग्नि पुराण कहता है जो राजा राष्ट्र को दुःखित करता है वह न केवल राज्य से किन्तु प्राणों से भी वियुक्त कर दिया जाता है + । व्यास भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार समुद्र में यदि नौका टूट जाय तो उसे छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार जो राजा रक्षा नहीं करता उस को भी छोड़ कर दूसरे को राजा बनाना चाहिये । *

\+ सदैव कुटिलो यस्तु स्वपदाद्द्राग्विनश्यति । ४ ।

× अन्यथा स्वं प्रजातापो नृपं दहति सान्वयम् ॥ ४ । ४ ।

÷ गुणनीतिबलद्वेषी कुलभूतोऽप्यधार्मिकः ।
नृपो यदि भवेत्तं तु त्यजेद्राष्ट्रविनाशकम् ॥
तत्पदे तस्य कुलजं गुणयुक्तं पुरोहितः ।
प्रकृत्यनुमतिं कृत्वा स्थापयेद्राज्यगुप्तये ॥ २ । ६६ ।

\+ राष्ट्रकर्षी भ्रश्यते राज्यार्थाच्चैव जीवितात् ॥ २२५ । ३१

* षडेतान्पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अरक्षितारं राजानं.................॥ ५७ । ४५ । शान्ति ॥

इसी प्रकार जितने भी प्राचीन राजनीति के पण्डित हैं उन सब की सम्मतियां इस विषय में दिखाई जा सकती हैं। एक स्थान पर महाभारत में एक ऋषि से पूछा जाता है कि हे ऋषे ! जो राजा काम और मोह के वशीभूत हुआ पाप करता है उसके लिये क्या करना चाहिये ? वे उत्तर देते हैं कि जब राजा अपने दुराचारों को नहीं छोड़ता है तो सारा राष्ट्र उस से ऐसा तंग हो जाता है जैसे में घर आये हुए सांप से घर वाले तंग हो जाते हैं। तब समस्त प्रजाओं ब्राह्मणों तथा सन्यासियों को उचित है कि उस की आज्ञा का पालन न करें तथा अन्त में उस को मार ही डालें ÷ । किन्तु पाठक वर्ग ! प्राचीन काल में केवल ऐसा माना ही नहीं जाता था किन्तु यदि राजा सामाजिक सम्मति की परवाह न करके उच्छृंखल हो जाता था तो वस्तुतः उस को सिंहासन च्युत कर दिया जाता था आज महाराज वेन का इतिहास कौन नहीं जानता उस ने अभिमान से उन्मत्त होकर सारे राज्य में आघोषणा करा दी थी कि कोई यज्ञ नहीं करे, कोई दान नहीं दे तथा कोई अग्निहोत्र न करे क्योंकि मेरे से अतिरिक्त अन्य कोई भी तुम्हारा प्रभु नहीं है मैं ही तुम्हारा एक मात्र ईश्वर हूं। इस पर बहुत से ऋषियों ने आकर उसे समझाया कि वह इस आघोषणा को लौटा ले परन्तु उस ने दर्पवश होकर उत्तर

÷ यः पापं कुरुते राजा काममोहबलात्कृतः ।
प्रत्यासन्नस्य तस्यर्षे ! किं स्यात्पापप्रणाशनम् । १२३। १२१।

ऋषिः—दुराचारान् यदा राजा प्रदुष्टान्न नियच्छति ।
तस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद्वेश्मगतादिव । १६ ॥

तं प्रजा नानुवर्तन्ते ब्राह्मणा न च साधवः ।
ततः संशयमाप्नोति तथा वध्यत्वमेव च । १७ ॥ शान्ति

दिया कि राजा में ही सब देवता आजाते हैं अन्य देवताओं की पूजा करने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं ? तुम्हारा काम केवल राजा की पूजा करना है तथा जिस प्रकार भर्ता की आज्ञा स्त्री को पालन करनी पड़ती है, उसी प्रकार तुम्हारा काम है कि तुम राजा की आज्ञा का पालन करो । इतना सुन कर क्या पाठक वर्ग ! राष्ट के लोग शान्त रह सकते थे ? सारा राष्ट्र क्रुद्ध होगया उन्होंने निश्चय कर लिया कि इस समय राजा का वध करना ही श्रेयस्कर है । इस पर ऋषियों ने अभिमानी वेन को मरवा दिया * । क्या यह स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि प्राचीन काल में प्रजा राजा को उच्छृंखल देख कर सिंहासन से हटा कर इस तरह फेंक सकती थी जिस तरह दूध में से मक्खी निकाल कर फेंक दीजाती है ।

इसी प्रकार राजा जनमेजय का इतिहास महाभारत में दिया है कि वह महाबलवान् था परन्तु प्रमादवश उसने एक वार एक निर्दोष ब्राह्मण की हत्या करदी इस पर प्रजा ने उसे सिंहासन से च्युत कर दिया । प्रजा से परित्यक्त हुआ वह राजा अत्यन्त दुःखित होकर रात दिन जंगल २ घूमता रहा । घूमते २ वह एक वार ऋषि शौनक के आश्रम में पहुंचा । ऋषि को मालूम था कि वह प्रजाओं द्वारा सिं-

---

* न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं कदाचन ।
भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः ॥ इत्यादि ।
हन्यतां हन्यतां पाप इत्यूचुस्ते परस्परम् ।
इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्मुनिगणा नृपम् ।
निजघ्नुर्निहितं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना ॥ विष्णुः १ अ०।१३४

हासन से उतरा हुआ है वे बोले जनमेजय ! तुम्हारा हम से कोई काम नहीं है तुम यहां से चले जाओ तुम हमें स्पर्श भी मत करो तुम्हारा यहां रहना भी हमें अच्छा प्रतीत नहीं होता है । जनमेजय ! तुम नहीं जानते कि हम लोगों को तुम से रुधिर के समान दुर्गन्ध आती है । मुर्दे के समान तुम्हें देखने में हमे ग्लानि उत्पन्न होती है । अहो ! तुम वास्तव में मुर्दा हो केवल जीते हुए के समान इधन उधर घूम रहे हो *। पाठकवर्ग ! क्या प्रजा की स्वतन्त्रता का इस से अधिक उज्ज्वल चित्र संसार के अन्य देशों के सारे इतिहास में कहीं ढूढने से भी मिल सकता है ? क्या किसी अन्य देश में एक जटाचीर धारी सन्यासी एक राजा के लिये ऐसे निर्भीक शब्द प्रयुक्त कर सकता है ? हमारा विश्वास है कि प्राचीन भारत के स्वर्गीय इतिहास के पृष्ठों में जो ऐसे २ भव्य चित्र मिलते हैं वे सारे संसार के लिये बिलकुल नये और अत्यन्त आकर्षक है । पाठक वर्ग ! हम तो इस दृष्टान्त द्वारा केवल यही सिद्ध करना चाहते हैं

---

* आसीद्राजा महावीर्यः पारीक्षिज्जनमेजयः ।
अबुद्धिपूर्वमागच्छत् ब्रह्महत्यां महीपतिः ॥
तं ब्राह्मणाः सर्वएव तत्यजुः सपुरोहिताः ।
स जगाम बनं राजा दह्यमानो दिवानिशम् ॥
प्रजाभिः स परित्यक्तश्चकार कुशलं महत् ।
अतिवेलं तपस्तेपे दह्यमानः स मन्युना ॥ १५० । ५ ॥

शौनक—किन्त्वय्यास्मासु कर्तव्यं मा मां स्प्राक्षीः कथञ्चन ।
गच्छ गच्छ न ते स्थानं प्रीणात्यस्मानिति ब्रुवन् ॥
रुधिरस्येव ते गन्धः शवस्येव च दर्शनम् ।
अशिवः शिवसंकाशो मृतो जीवन्निवाटसि ॥ १५० शान्ति

प्राचीन काल में प्रजा का यह पूर्ण अधिकार था कि जब राजा मर्यादा का उल्लंघन करे तो वह उसे सिंहासन से च्युत कर दे।

इन उपर्युक्त राजाओं के अतिरिक्त भारतीय इतिहास में अन्य अनेक राजा प्रजा द्वारा सिंहासन च्युत किये जाचुके है। जिन में से उदाहरण के तौर पर महाराज नहुष, महाराज सुदास, महाराज यवन, महाराजा सुमुख तथा महाराज निमि के नाम प्रस्तुत किए जासकते हैं +। इनके इतिहास को विस्तार से न देकर केवल नाम देना ही हम पर्य्याप्त समझते हैं।

प्राचीन काल में यह सिद्धान्त माना जाता था कि राजनियम टूटी हुई कुटिया में रहने वाले रंक से लेकर प्रासादवासी राजा तक सब के लिये समान है। मियम तोड़ने पर जो दण्ड एक रंक को दिया जाता था वही राजा के लिए भी निश्चित था। राजा और रंक के लिये भिन्न २ नियम नहीं बनाये जाते थे। जिस प्रकार प्रकृति राजा और रंक दोनों को एक ही दृष्टि से देखती है उसी प्रकार प्राचीन काल में रामनियम भी राजा और रंक दोनों को समान भाव से देखता था। इसी सिद्धान्त का यह परिणाम था कि प्राचीन काल में राजाओं और राज पुत्रों के लिये भी दोष करने पर वही दण्ड था जो दूसरों को दिया जाता था। यही कारण है कि जब भरत ने अयोध्या में आकर माता कैकेयी से एक दम सुना कि राम वन में गये हैं तो वे माता से पूछने लगे कि क्या रामने कोई दुश्चरित्र किया था? क्या उसने

+ वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥ ७ । ४१ । मनु० ॥

परस्त्री का हरण किया था जो उस को बनवास दिया गया। माता क्या प्यारे भाई राम ने किसी ब्राह्मण का धन तो नहीं लूटा था क्या उसने किसी निर्दोष पुरुष को तो नहीं मरवा दिया बताओ क्या कारण है कि उसे दण्डकारण्य में वनवास दिया गया * ।

पाठक वर्ग ! भरत के इन प्रश्नों से पता लगता है कि इन अपराधों पर राजा और राजपुत्र को भी वनवास जैसा कठोर दण्ड दिया जासकता था। इस लिये यदि भारत के इतिहास में इस प्रकार के हमें अनेन उदाहरण मिलते हैं कि जिस में राजाओं को भी सिंहासन पर से उतारा गया है अथवा उनका वध किया गया है तो इस में हमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

---

* अयोध्या। ७२। ४३॥

चतुर्थाध्याय

प्रजातन्त्र शासन

इस भूमण्डल पर भारतवर्ष एक अद्भुतालय है भूमण्डल में यह एक दर्शनीय स्थान है। प्रकृति देवी ने भी भारत को ही अपना विहारोद्यान चुना है। यहां के नये से नये प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर कवियों ने इसे स्वर्गभूमि के नाम से स्थान २ पर पुकारा है।

भारत की भूमि सर्व पदार्थों के लिए उपजाऊ है। जो वस्तु अन्यत्र दुर्लभ हैं वे भारत में सुलभ हैं और जो यहां दुर्लभ हैं वे अन्यत्र कहीं भी सुलभ नहीं हैं। जो वस्तु कहीं अन्यत्र फूलफल सकती है वह भारत के वायु मण्डल में और भी अधिकता से प्रफुल्लित हो सकती है। और जो वस्तु भारत के वायुमण्डल में भी नहीं फूली फली वह निश्चय से अन्यत्र भी कहीं बड़ी कठिनता से फूलफल सकेगी।

जो नवीनता और सौन्दर्य आज कहीं अयन्त्र दृष्टिगोचर होता है भारत ने भी अपने दीर्घ जीवन में कभी न कभी अवश्य उसका उपभोग किया है। आज कतिपय देशों का धन धान्य हमारे नयनों को लुभाता है पर कोई समय था जब भारत में इस से भी अधिक धन धान्य था और सारे देश उस पर लोलुप होरहे थे। आज समुद्रीय व्यापार के स्वामी विदेशी हैं परन्तु कभी समय था जब कि समुद्रीय

व्यापार में भारत की ही सब जगह तूती बोल रही थी। आज अन्य देशों के कला कौशल को देखकर हमारी आंखें चकाचौंध हो जाती हैं। आज विद्वत्ता और पाण्डित्य अन्य देशों में है और वे पाण्डित्य के गर्व से अभिमानी हो कर भारत को मूर्ख और जाहिल कह कर पुकारते हैं परन्तु कोई समय था जब भारत विद्वत्ता और पाण्डित्य के शिखर तक पहुंच चुका था परंतु तो भी अत्यन्त नम्र था। उस समय सारा संसार उसका शिष्य था और उस को अपना गुरु मानता था। नई २ विद्यायें जो आज दिखाई पड़ती हैं उनका आविर्भाव यह पहले ही पहल नहीं हुआ किन्तु एक बार पहले भी इन सब का कुछ न कुछ आविर्भाव भारत के वायु मण्डल में कभी हो चुका है। आज अन्य देशों का तेज और बल हमें आश्चर्य में डाल रहा है परन्तु ये भी भारत के लिये नया नहीं है। कभी भारत के भी शिथिल अंगों में बल था और मुख पर तेज था परन्तु वह तेज शीतल था इसी लिये संसार उस से डरता नहीं था पर उस पर आकर्षित होकर खिंच आता था। ठीक है कि हमारे दौर्भाग्य से क्या लक्ष्मी क्या सरस्वती और क्या भवानी आज भारत को छोड़ अन्य देशों में निवास करती हैं परंतु ये भारत भूमि की बहुत देर तक कभी सखियें रहचुकी हैं। यह सब कुछ भारत के लिये अजनबी और नई वस्तु नहीं हैं।

अभिप्राय यह है कि भारत के लिये कोई वस्तु नवीन हो यह बहुत कठिन है। यदि युरोप और अमेरिका में आज राजनीतिशास्त्र की खूब उन्नति हुई है किंतु यह बात नहीं है कि यह भारत के लिये बिलकुल नई हो। एक समय भारत में भी राजनैतिक तत्वों पर गूढ़ विचार हो चुका है। यदि उन विद्वानों और तत्वज्ञों की केवल नामावलि

ही दी जाय तो एक पृष्ठ भर जाय। राजनीति के नये रहस्य जो आज युरोपियनों ने पता लगाये हैं उन पर भारतीय राजनीतिज्ञों ने भी गूढ़ विचार किया था। आज अन्य देशों में प्रजाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता है और प्रजायें अपने ऊपर अपने आप राज्य करतीं हैं और उनकी ईश्वरदत्त स्वतंत्रता पर हस्ताक्षेप करना पाप माना जाता है परंतु कोई समय था जब भारत में भी प्रजा पूर्ण स्वतंत्र थी और अपने ऊपर अपने आप राज्य करती थी। अर्थात् भारत के लिये स्वतंत्रता या स्वराज्य कोई नई चीज़ नहीं है यह उस के लिये चिर परिचित और अत्यन्त पुरानी है।

पिछले अध्याय में हमने सिद्ध किया है कि प्रजा को पूर्ण अधिकार था कि वह किसी को राजसिंहासन पर बिठाये और किसी को राजसिंहासन से पृथक् करे। अगले कुछ पृष्ठों में हम दूसरा एक चित्र दिखाना चाहते हैं कि भारत के उज्वल इतिहास में प्रजातंत्र शासन या रिपब्लिक भी चिरकाल तक रही है प्रजाओं ने पूर्ण स्वतंत्रता के जन्मसुख का चिरकाल तक उपभोग किया है।

ईसा से ५०० वर्ष पहले प्रजातन्त्र शासन की साक्षियां:—बौद्ध ऐतिहासिक पुस्तकों के अवलोकन से पता लगता है कि ईसा के ५०० वर्ष पहले भी बहुत से भिन्न २ देशों में लोकसभाओं द्वारा ही देश का राज प्रबन्ध होता था। इन लोकसभाओं में वृद्ध और युवा सब प्रकार के लोग एकत्रित होते थे और अपना एक मुखिया चुनते थे। वह इस लोकसभा का सभापति होता था। देश का शास्ता माना जाता था। यह ठीक २ नहीं कहा जा सकता कि वह किस

तरह चुना जाता और कितनी देर के लिये चुना जाता था। परन्तु उसको राजा की उपाधि से विभूषित किया जाता था और राजा के ही नाम से उसका संकेत किया जाता था। रीजडेविड का कथन है कि जिस प्रकार रोम में रिपब्लिक के समय कौन्सल लोगों का पद था बहुत सम्भवतः वही पद इन राजाओं का माना जाता होगा। उस भवन का नाम कि जिस में उपरोक्त लोकसभा होती थी संघागार था। कपिल वस्तु में इस प्रकार का संघागार था कि जिस में शाक्य लोगों की लोकसभा ने कोशल देश के राजा **प्रसेनजित** के भेजे हुए विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार किया था। बौद्ध पुस्तकों में आता है कि जब अम्बष्ट कपिलवस्तु गया था उस समय वह संघागार में ही पहुंचा जहां कि शाक्य लोगों की लोकसभा हो रही थी। इसी प्रकार बुद्ध भगवान् की मृत्यु के पश्चात् जब **आनन्द** इस शोक जनक समाचार को सुनाने के लिये मल्लदेश में पहुंचता है तो वहां मल्ल लोगों की सभा को लगा हुआ पाया और इस सभा में बुद्ध की मृत्यु का शोक समाचार सुनाया है।

बुद्ध के जीवन चरित्र में आता है कि जब वे महावन के न्यग्रोधाराम में ठहरे हुए थे तो कपिलवस्तु में एक नया संघागार बन रहा था और बुद्ध की उपस्थिति में ही उसका बनना समाप्त हुआ था। और बुद्ध भगवान् से प्रार्थना की गई थी कि लोकसभा के अधिवेशन होने से पहले वे अपने व्याख्यानों की अमृत वर्षा से उसको शुद्ध करें। इस लिये भगवान् और उन के शिष्य आनन्द और मोग्गालायन के मधुर अमृतमय व्याख्यान चिरकाल तक इसी संघागार में हुए थे।

रीजडेविड कहते हैं कि निस्सदेह उस समय सभी मुख्यस्थानों पर इस प्रकार के भवन बने हुए थे। इन की बनावट एक विशेष प्रकार की थी। इनके ऊपर एक विशाल छत होती थी परन्तु ये चारों तरफ से खुले रहते थे और दीवार नहीं बनाई जाती थी।

लिच्छवी जाति तथा विदेह देश में भी इसी प्रकार भिन्न २ आठ जातियों के प्रतिनिधियों की एक सम्मिलित सभा थी। उसका एक सभापति (Council) तथा एक उप सभापति (Vice council) होता था। ये दोनों स्टेट के सब से बड़े अधिकारी माने जाते थे। इनसे नीचे सेनापति का पद था *।

इसी प्रकार वृज्जक लोग भी अपने देश का राजप्रन्बन्ध लोक सभा द्वारा ही चलाते थे। मगध के राजा बिम्बिसार के पुत्र अजात शत्रु ने वृज्जक देश की वृद्धि को देख कर अपनी बड़ी सेना से उस को परास्त करना चाहा था परन्तु समरयात्रा करने से पहले उस ने बुद्ध भगवान् से यह निश्चय करना चाहा कि उसकी विजय होगी कि नहीं। इस लिये उसने वर्षकार को भगवान् के पास यह पूछने को भेजा कि वृज्जक लोगों के साथ युद्ध करने से क्या परिणाम होगा। वर्षकार ने जाकर बड़ी नम्रता से भगवान् से अजात शत्रु का उपरोक्त प्रश्न पूछा उन्होंने अपने प्रिय और ज्येष्ठ शिष्य आनन्द को बुलाया और उस से प्रश्न किया कि क्या तू जानता है कि वृज्जक लोग अपनी लोकसभायें निरन्तर तथा उचित रीति से करते हैं वा नहीं ? उस ने कहा हां वे अपनी सभायें भली प्रकार और शीघ्र २

---

* public adnenestration in anecemi mdia

करते हैं। तब भगवान् बोले हे वर्षकार ! जब तक वृज्जक लोग अपनी सभाओं में एक साथ उठते और एक साथ बैठते हैं, वृज्जक लोगों की भिन्न २ जातियां अपने समस्त राज कार्यों को एक साथ चलाती हैं, जब तक उन नियमों को जो बन चुके हैं वे तोड़ते नहीं हैं, पुराने समय में बनी हुई संस्थाओं के अनुसार जब तक वे काम चलाते हैं जब तक वे अपने में से बड़े पुरुषों की मान प्रतिष्ठा और सहायता करते हैं और उनकी आज्ञाओं का मानना अपना कर्तव्य समझते हैं तब तक वृज्जक लोगों का मान भंग नहीं हो सकता उनकी अवनति नहीं हो सकती परन्तु वे उन्नत और उन्नत होते जावेंगे ।

उपरोक्त घटना से इतना ही केवल सिद्ध नहीं होता कि वृज्जक लोगों में लोकसभायें थीं पर साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि वे चिर काल से उनके अन्दर प्रचलित थीं तथा दूसरा परिणाम इस से यह निकलता है कि जो देश लोकसभा द्वारा शासित होते थे उनको विजय करना अत्यन्त दुष्कर माना जाता था। क्योंकि इतिहास की साक्षी है कि अजातशत्रु जैसा महा सम्राट् वृज्जक लोगों के छोटे से राष्ट्र को कभी जीतने में सफल नहीं हुआ।

इन सभी राष्ट्रों का नाम प्रायः चाणक्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में दिया है तथा लिखा है कि इन का शासन लोकसंघ द्वारा होता है। इन उपरोक्त जातियों में से मल्ल जाति की लोकसभा या लोक संघ की ओर बहुतों ने संकेत किया है। अष्टाध्यायी के एक सूत्र पर सभी वृत्तियों करने वालों ने ऐसा लिखा है जिस से स्पष्ट पता लगता

है कि मल्ल जाति में एक संघ था जो राजप्रबन्ध के उद्देश्य से ही बनाया गया था * ।

यहां हम अपनी साक्षी के लिये कौटिल्य को प्रस्तुत किये विना नहीं रह सकते। कौटिल्य कहता है कि संघ दो प्रकार के होते हैं एक वार्ताशस्त्रोपजीविन: दूसरे और राजशब्दोपजीविनः। वे कहते हैं कि पहले वे जो वाणिज्य व्यापार शिल्प आदि के लिये संघ बनते है और दूसरे वे जो राज्य करने के लिये बनाये जाते हैं। राजशब्दोपजीवी संघो का उदाहरण देते हुए कौटिल्य कई जातियों का नाम पेश करता हैं जैसे लिच्छविक, वृजिक, मल्लक, मद्रक, कुकुर, कुरु, और पाञ्चालदि ......" ये सब Republic थीं। इन में से लिच्छविक, वृजिक और मल्लक जातियों में प्रजातन्त्र शासन था यह इतिहास से सिद्ध हो चुका है अतः निश्चय होता है उपरोक्त सब जातियों में प्रजातन्त्र शासन होता था।

युनानी ऐतिहासिकों की साक्षियां:—अलकजेन्डर के अनेक युनानी ऐतिहासिकों ने लिखा है कि अलक्जेन्डर के

---

* (आयुधजीविसंघाञ्ज्यट् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्) शास्त्रों को बनाकर जीविका करने वाला संघ आयुधजीवी कहाता था इसी का उपरोक्त सूत्र में उपादान है। परन्तु आयुधजीवी संघ से अतिरिक्त एक संघ और अवश्य था जो कि राज प्रबन्ध के लिये बनाया जाता था। इसी लिये जब वृत्तिकार से पूछा गया कि इस सूत्र में आयुध शब्द न रखने से क्या आपत्ति होगी तो उसने कहा कि मल्ल शब्द से कहीं ञ्ज्यट् प्रत्यय न हो जाय। अर्थात् मल्ल जाति में कोई संघ था जो आयुधजीवी नहीं था और राज प्रबन्ध के लिये बना था।

आक्रमण के समय पञ्जाब की बहुत सी जातियों का राज प्रम्बन्ध प्रजा तन्त्र रीति से होता था। उदाहरण के तौर पर इन में से अम्बष्ठ, क्षुद्रक Oxydrakai मल्ल mallai कर्थनियन kathenians आदि का उल्लेख किया जा सकता है। यह उन विदेशी यात्रियों का प्रमाण है जिन्होंने अपनी आखों से उपरोक्त जातियों को तत्कालीन अवस्था को देखा था।

बड़े हर्ष की बात है कि युनान से आने वाले विदेशी यात्रियों को भी भारतवर्ष की प्रजातन्त्र शासन पद्धति ने मुग्ध कर लिया था इस लिये यद्यपि युनानि ऐतिहासिकों ने चाहे भारत के राजकीय प्रम्बन्ध के विषय में बहुत कम लिखा है तथापि उसमें भी उन्होंने यहां के प्रजातन्त्र शासन का स्थान २ पर उल्लेख किया है। मैग-स्थनीज एक स्थान पर भारत में प्रजातन्त्र शासन की साक्षी देता हुआ लिखता है "अस्तु जब तक बहुत सी सन्ततियां हुई और नष्ट भी हो गईं तो कहा जाता है कि एकसत्ताक राजा हटा दिये गये और नगरों में प्रजातन्त्र शासन आरम्भ किये गये +। उसकी कल्पना और श्रुति कुछ भी हो परन्तु इतना स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस के समय में भारत के अनेक नगरों में प्रजातन्त्र शासन हो रहा था। इसी विषय में एक और स्थान पर वह लिखता है कि "आखिरकार अनेक वर्षों के बीतने के पश्चात् बहुत से नगरों ने प्रजातन्त्र शासन पद्धति

\+ At last after many generations had come and gone, the sovereignty, it is paid was desolved and democratic government were pet up in the cities (by *M. C.* crindle. frojment I 88 p. ancient India)

को स्वीकार किया । यद्यपि कुछ एक ने अलक्जेन्डर के आक्रमण तक एक सत्ताक राज्य को ही प्रचलित रखा × । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि कोई समय था जब भारत में प्रजातन्त्र शासन एक सत्ताक से अधिक सर्व प्रिय हो चुका था।

युनानी इतिहास लेखक एरियन भी इस बात में साक्षी है कि प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र शासन एक अत्यन्त प्रचलित शासन पद्धति थी। वह एक स्थान पर लिखता है कि आर्य लोग डाओनीसस से सेन्ड्राकोटस (चन्द्रगुप्त) तक १५३ राजाओं की नामावलि प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने ६०४२ वर्ष तक राज्य किया परन्तु इन के बीच में तीन बार रिपब्लिक या प्रजातन्त्र शासन भी स्थापित हुआ था * । अर्थात् तीन बार एकसत्ताक राज पद्धति को हटाकर लोगों ने प्रजातन्त्र शासन को लागू किया + ।

× At last, howevr after many years had gone most of the cities adopted the democratic form of government, though some retained the kingly until the invasion of the country by Alaxander. (Ancient India. M.c crndle 40 p.)

* From the time of Daonysos to Sandrakatas the Indians counted 153 kings and a period of 6052 years, but among there a republic was thrise estab lished (203 P. A' India disribed by mof. S Arri.)

\+ इस से हमारा अनुमान है कि जहां कहीं पुराणों में राजाओं की नामावलि छोटी है और उनके राज्य का समय बहुत बढ़ा दिया हुआ है वहां उन वर्षों की संख्या को अशुद्ध कल्पना करने की अपेक्षा यह कल्पना अधिक माननीय होनी चाहिए कि बीच में कई बार प्रजातन्त्र शासन स्थापित हुआ।

अभी हम एरियन की एक और साक्षी पाठकों के सन्मुख रखना चाहते हैं जो इस बात के लिये अत्यन्त प्रबल प्रमाण है कि प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र शासन पद्धति या रिपब्लिक अत्यन्त ही प्रचलित थी। उस से पता लगता है कि इस प्रकार शासित होने वाले प्रत्येक नगर में एक मजिस्ट्रेट चुना जाता था जिस के द्वारा प्रजा सब राज कार्यों को चलवाती थी। भारत की भिन्न २ श्रेणियों का वर्णन करता हुआ एरियन एक स्थान पर लिखता है कि "यह छटी श्रेणी है इन का काम है कि जिस राष्ट्र में लोग राजा से शासित होते हों वहां राजा को और जिस राष्ट्र में लोग स्वराज्य या सेल्फगवर्नमेन्ट से शासित होते हों वहां मजिस्ट्रेट या मुखिया को सब प्रकार की खबर पंहुचायें।" इस के आगे वह कहता हैं "सातवी श्रेणी में राष्ट्र के मन्त्रियों या सलाहकारों को गिना जा सकता है उनका काम है कि वें जहां राजा हो वहां राजा को और जो प्रजातन्त्र शासन होने वाले नगर हों वहां मजिस्ट्रेट या मुखिया को प्रजा के प्रबन्ध के विषय में सलाह दें।" क्या यह बात सिद्ध नहीं करती है कि प्रजातन्त्र शासन भारत में एक अत्यन्त प्रचलित शासन पद्धति रही है। हमारे कट्टर से कट्टर विरोधी को इस निश्चय प्रमाण के सामने अवश्य सिर झुकाना पड़ेगा। बहुत सम्भवतः इस प्रकार के अनेक प्रमाणों को देख कर लेफ्टिनेन्ट + मार्क विल्क्स ने लिखा था कि भारत का प्रत्येक नगर एक छोटी रिपब्लिक है तथा सदा रही है और सारा भारत इस प्रकार की

\+ 6. Superintendents:—They report every thing to the king where the people have a king, and to the magestrates where the people are self governed.
"7. Councillors of state:—Who advice the king or the magestrate of self governed cities in the management of public affairs. (A.D. by crindle)

सहस्रों रिपब्लिक्स (प्रजातन्त्र शासनों) का समूह है।

दक्षिणीय केरल देश में प्रजातन्त्र शासन:—ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी में दक्षिणीय केरल देश का जो इतिहास मिलता है उस से पता लगता है वहां भी लोकसभाओं द्वारा शासन होता था। वहां पांच प्रकार की राजकीय सभायें थी जिनमें से प्रथम सभा सर्वसाधारण लोगों के प्रतिनिधियों की थी इसका काम राजा को प्रतिबन्ध में रखने का था ताकि राजा उच्छृंखलता से कुछ कार्य न कर सके। दूसरी सभा में बड़े ब्राह्मण और पुरोहित लोग बैठते थे। यह सभा धार्मिक विषय में हस्ताक्षेप करती और अपना निर्णय देती थी। तृतीय वैद्य सभा के नाम से कही जा सकती है। इस का काम व्याधियों का निवारण तथा राष्ट्र में स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना था। चतुर्थ ज्योतिर्विद् परिषत् या ज्योतिषियों की सभा थी जो देश के त्योहारों आदि के समय का निश्चय करती थी। पञ्चम मन्त्रि सभा थी यह प्रबन्ध कारिणी सभा कही जा सकती है। इसका काम कर आदि का एकत्रित करना तथा न्याय आदि का प्रबन्ध करने का था *।

---

* **रामकृष्ण ऐयरन** polity and social life in ancient keral **में वहां के प्राचीन ग्रन्थों से उद्धरण दिया है इस को प्रमथ नाथ बैनर्जी ने अपनी** public administration in ancient India **में उल्लेख किया है।**

इस से पता लगता है कि राष्ट्र का न केवल राजकीय प्रबन्ध ही परन्तु धार्मिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी आदि अन्य प्रकार का प्रम्बन्ध भी सर्वसाधारण लोकसभाओं द्वारा चलाया जाता था । क्या इस प्रकार सभी क्षेत्रों में प्रजासत्तात्मक राज्य को देख कर कोई यह कह सकता है कि प्राचीन भारतवासी प्रजातन्त्र शासन से सर्वथा अनभिज्ञ थे। विशेषतः बौद्ध समय में बुद्ध भगवान् के स्वतन्त्रता पूर्ण धर्म का प्रभाव ऐसा पड़ा कि भारतवासियों में धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ २ राजनैतिक स्वतंत्रता के भाव भी उदित हुए । इन नवीन भावों से प्रेरित होकर उन्हों ने परम्परा से चली आती हुई लोकसभाओं और प्रतिनिधि सभाओं का फिर से उद्धार किया । इसी लिये बौद्ध समय में हमें प्रजातंत्र शासन का एक बड़ा भव्य और उज्वल चित्र मिलता है । और भारत के सभी ऐतिहासिक सहमत हैं कि बौद्ध कालीन भारत में प्रजातंत्र शासन बहुत प्रचलित था + ।

बौद्ध समय में जो पुस्तकें बनी हैं उनके अन्दर प्रजातन्त्र शासन की अनेक साक्षियां पाई जासकती हैं । अचरंग सुत में एक स्थान पर (ii ३. १. १०) कहा है कि एक राज ऐसा होता है जो दो

\+ **अपने उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए यहां पर हम** Inter protation of Hindu law **(सरकार) से एक उद्धरण देते हैं** "After his time his fallowers in true faithfulness to their great master, well inclined to foster if not to create representative institutions .... thera fore the existing system of Hindu popular institutions such village communities aud assemblies had their full play under the Budhistic Rule.

रायाणि कहाता है तथा एक राज्य **गणरायाणि** कहाता है। जहां दो राजा मिल कर राज करें वह दोराज्याणि राज्य कहाता है तथा जहां मनुष्यों का संघ या गण मिल कर राज्य करे वह गणराज्याणि कहाता है। यह प्रजातन्त्र शासन की एक प्रबल साक्षी है। ऐसी अनेक साक्षियां पाई जासकती हैं।

प्रजातन्त्र शासन उतना ही प्राचीन है जितना भारत प्राचीन है। ब्राह्मण में एक सत्ताक स्वेच्छाचारी राजा की अत्यन्त निन्दा की गई है और उसे राष्ट्र का घातक और प्रजा का भक्षक कहा गया है *। इस लिये वेद भगवान् अनेक स्थानों पर लोक सभाओं द्वारा शासन करने का उपदेश करते हैं। वेद में एक स्थान पर राजा प्रजा से कहता है "आवोऽहं समितिं ददे" अर्थात् मैं तुम्हें समिति या लोकसभा देता हूं।

इसी के अनुसार हम पाते हैं कि रामायण के समय भी एक लोकसभा थी जिसका नाम परिषत् था। महाभारत के अवलोकन से भी पता लगता है कि उस समय श्री द्वारका में अन्धक और वृष्णि लोगों में लोकसभा द्वारा ही शासन होता था।

---

* राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः विशमेव राष्ट्रायाद्यं करोति तस्माद्राष्ट्री विश. मत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति। शत का. १३। बा. ३। क. ७-८।

महाभारत में कहा कि कंस को मार कर * यादव अन्धक और वृष्णि लोग इकट्ठे मिलकर + अपना कार्य्य करते हुए सुख से रहते हैं। इससे पता लगता है कि कंस के मरने पर उन्होंने किसी दूसरे को राजा नहीं माना परन्तु सब को मिलाकर एक सभा बनाई गई जो राज करने लगी। इस सभा का नाम सुधर्म्मा था। इस सभा का एक सभापति होता था जिस को सभापाल के नाम से महाभारत में पुकारा गया है। इस की सिद्धि निम्नलिखित घटना से हो जाती है।

जिस समय अर्जुन तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका में पहुँचे और उन्होंने अपने मित्र कृष्ण की सलाह से सुभद्रा का हरण किया उस समय यादवों को सुभद्रा हरण सुनकर अत्यन्त कोप हुआ तो महाभारत में कहा है कि उसी समय कुछ लोगों ने इस अर्जुन के अत्याचार की सूचना सभापाल को दी। सभापाल ने इस दुर्घटना को सुनते ही एक भय सूचक भेरी बजाने की आज्ञा दी। उस भेरी के नाद को सुन कर सब सभासद लोग उस सभाभवन से एकत्रित हुए कि जहां उज्वल सुवर्ण से बने मणि और विद्रुमों से भूषित सैकड़ों

---

* कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः
संभूय सुखमेधन्ते भारतान्धक वृष्णयः ॥
उद्योग पर्व- । ५० । ५० ॥

\+ ते समासाद्य सहिताः सुधर्मा मभितः सभाम्
सभापालस्य तत्सर्व माचख्युः पार्थविक्रमम्
तत्र जाम्बूनदांगानि स्पर्ध्या स्तरणवन्ति च
मणि विद्रुमाचत्राणि ज्वलिताग्नि प्रभाणि च
भेजिरे पुरुषव्याघ्रावृष्ण्यन्धकमहारथः
सिंहासनानि शतशोधिष्ण्या नीवहुताशना
तेषां सुमुपविष्टानां देवानामिवसन्मये
आचख्यौ चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सुहानुगः।
आदिपर्व अर्जुन

सिंहासन पड़े हुए थे और उन पर बहुमूल्य नरम गद्दे बिछे हुए थे । जब वे वृष्णि और अन्धकों के मुख्य लोग वहां पर बैठ गये तब सभापाल ने खड़े होकर अर्जुन के अत्याचारों का क्रोधपूर्ण शब्दों में वर्णन किया ।" अस्तु इस से पता लगता है कि उनका राजा कोई नहीं था किन्तु एक सभापाल नियत होता था जिस का काम सभा को बुलाना था और वृष्णि और अन्धकों के मुखिया लोग इस सभा के सभासद मात्र थे । वे कोई राजा नहीं थे। सारी महाभारत में उन्हें कहीं भी राजा के नाम से नहीं पुकारा है इसी लिऐ राजसूय यज्ञ में जब भीष्म पितामह के आदेश से महाराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण भगवान् को अर्घ्य देने लगे तो शिशुपाल ने यही कहा था कि इतने राजाओं और महाराजाओं के होते श्रीकृष्ण को क्यों अर्घ्य दिया जाता है जो कहीं का राजा नहीं है ।

इसी प्रकार जब यादवों के परस्पर लड़ कर मर जाने पर कृष्ण ने हस्तिनापुर से अर्जुन को बुला भेजा था तो अर्जुन ने इसी सुधर्मा सभा में आकर अमात्यों से बात चीत की * । अतः इन उपरोक्त वाक्यों से निश्चय होता है कि वृष्णि और अन्धक लोग भी प्रजातन्त्र शासन पद्धति से ही शासित होते थे ।

अर्जुन कहते हैं

* **अमात्यान्वृष्णि वीराणां द्रष्टुमिच्छामि मा चिरम्**
इत्येवमुक्त वचनं सुधर्मा यादवीं सभाम्
तमासनगतं तत्र सर्वा प्रकृतय स्तथा
ब्राह्मण नैगमास्तत्र परिवार्योपतस्थिरे ॥ कौसलपर्व । ७

महा भारत के समय दस्यु लोगों में प्रजातन्त्र शासन:—

किन्तु महाभारत के अध्ययन से मालूम होता है कि उस समय न केवल सभ्य और शिक्षित जाति ने ही प्रजातन्त्र शासन पद्धति को सर्वोत्तम समझा था किन्तु भारत की तत्कालीन अशिक्षित और असभ्य जातियों ने भी प्रजातन्त्र शासन पद्धति को ही सर्वोत्कृष्ट माना हुआ था। उस समय दस्यु लोग भी पैतृक परंपरा से आये हुए किसी एकाधिकारी राजा से शासित नहीं होते थे किन्तु वे मिलकर अपने में से किसी को अपना मुखिया चुन लेते थे और उसकी आज्ञा मानना अपना कर्तव्य समझते थे। इस प्रकार चुनने का भाव हमें महाभारत में एक स्थान पर स्पष्ट मिलता है। महाभारत में लिखा है कि सब दस्यु लोग एकत्रित हुए और उन्हों ने परस्पर विचार कर के कायव्य नामक योग्य पुरुष को अपने में से अपना प्रधान या मुखिया चुना और सब ने मिल कर उसे कहा कि हे कायव्य! तुम देश और काल के जानने वाले हो, बुद्धिमान् हो, बलवान् हो, और दृढ प्रतिज्ञ हो इसलिये हम सब इस बात में सहमत हैं कि तुम हमारे अग्रणी और मुखिया बनो। जिस प्रकार तुम हमको आदेश करोगे उसी प्रकार हम कार्य्य करेंगे इस लिये तुम हमारे देश की ऐसी पालना करो जैसी माता पिता अपने पुत्रों की करते हैं। पाठक वर्ग! क्या जिस प्रकार आज राष्ट्रपति चुना जाता है उसी तरह का यह चुनाव नहीं? इस से पता लगता है कि भारत के दस्यु भी प्रजातन्त्र शासन पद्धति या स्वराज्य के चलाने में अभ्यस्त थे। *

---

* मुहूर्त्त देश कालज्ञः प्राज्ञः शूरो दृढ़ व्रतः
ग्रामणीर्भव नो मुख्यः सर्वेषामेव सम्मतः
यथा २ वक्ष्यसि नः करिष्यामस्तथा तथा
पालयास्मान्यथान्याय यथा माता यथा पिता ॥ शान्तिः। १३५।

इस प्रकार प्राचीन भारत वर्ष में प्रजातन्त्र शासन पद्धति को सिद्ध करने के लिये हमने कुछ थोड़े से उदाहरण दिये हैं परन्तु प्रश्न हो सकता है कि इन थोड़े से उदाहरणों से यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि प्राचीन भारत में प्रजा के अधिकारों को राजाओं द्वारा कुचला नहीं जाता था। प्रत्युत इस से उलटा देखा जाता है कि भारत में एक सत्ता का राज्य चिरकाल तक रहा है और सर्व साधारण प्रजाओं को शासन में कोई भाग नहीं दिया गया तथा उन की जन्म सिद्ध स्वतन्त्रता की कोई परवाह नहीं की गई। परन्तु ऐसा कहने वाले के प्रति हमारा नम्र उत्तर है कि महाशय! नाम से डर जाना उचित नहीं है यद्यपि भारत में चिरकाल तक बहुत राष्ट्रों में एक सत्ता रही है तो भी एक सत्ता के नाम से डर जाना उचित नहीं है पहिले यह परीक्षा करनी चाहिये कि वह सत्ता किस प्रकार की थी। कुछ ऐतिहासिक निरीक्षण करने से भी यह मालूम हो जायगा कि जिन राष्ट्रों में एक सत्ता थी उस राष्ट्र के नगरों और ग्रामों में स्थानीय शासन सर्वथा स्थानीय प्रजा के हाथों में था उनके अन्तरीय शासन में बाहिर वालों का हस्ताक्षेप नहीं था और उनको वहां पर पूर्ण स्वतन्त्रता थी। सेन्ट्रल गवर्नमेंट या मुख्य शासन राजा या मंत्री मण्डल के हाथ में था। परन्तु वे भी स्थानीय शासनों में कोई बड़ा हस्ताक्षेप नहीं करते थे।

अतः भारत में एक सत्ता के होते हुए भी स्थानीय शासन सदा प्रजातन्त्र रहा है। अगले कुछ पृष्ठों में हम इसी स्थापना की सिद्धि करना चाहते हैं।

ग्रामों का स्थानिय शासन प्रजातन्त्र था

रीज डेविड बौद्ध ऐतिहासिक पुस्तकों को देख कर लिखते हैं कि उस समय प्रत्येक ग्राम में एक ग्राम समिति होती थी जिस का एक मुखिया होता था। ग्राम के लिये जलसिञ्चन, कृषि, जंगल तथा गृह-निर्माण आदि के जो नियम बनते थे वे इसी सभा द्वारा बनाये जाते थे।

ग्राम के मुखिया का यह काम था कि वह राजा को कृषि का दसवां भाग ठीक समय पर पहुंचाता रहे। एक प्रकार से ग्राम का सारा शासन इस मुखिया के हाथों में ही था जो कि वहीं का रहने वाला होता था न कि कहीं बाहर से भेजा जाता था। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह मुखिया का पद पैतृक परम्परा से चलता था अथवा चुना जाता था किन्तु बहुत सम्भवतः ऐसा ही मालूम होता है कि वह ग्राम समिति की ओर से ही चुना जाता था। मुखिया का ही यह काम था कि जब कोई राज्य का बड़ा अफसर या पदाधिकारी ग्राम में आवे तो वह उस के भोजन आदि के पहुंचाने का प्रबन्ध करे। इस लिये आजकल की तरह उन दिनों ग्राम वासियों को बेगार में कोई नहीं पकड़ता था ग्राम समितियों के होने से उन दिनों ग्राम सुख धाम थे क्योंकि ग्राम वासियों के लिये नियम कहीं बाहर से बन कर नहीं आते थे किन्तु स्वतः ग्राम निवासी ही अपने ग्राम के लिये नियम बनाते थे। यदि वे ही नियम बनाने वाले हों कि जिन पर नियम लगते हैं तो वहां सम्पत्ति और ऐश्वर्य बढ़ता ही है। इस लिये उन दिनों ग्राम सुखी मनुष्यों के धाम थे पाठकों के लिये हम यहां पर उन दिनों के ग्रामों का कुछ शाब्दिक चित्र देते हैं आशा है वह अप्राकरणिक नहीं होगा।

प्रत्येक ग्राम के बाहर ग्रामवासियों के उपयोग के लिये चार प्रकार की जमीनें छोड़ दीजाती थी। ग्राम के साथ लगती ही पहली ज़मीन हरे और छाया दार वृक्षों से युक्त होती थी जिस में बहुत सम्भवतः उद्यान लगाये जाते थे। इस में ग्राम वासी प्रातः और सांय-काल विनोद तथा भ्रमण कर सकते थे इस का नाम हम विहारोद्यान रख सकते हैं इस विहारोद्यान से आगे एक विस्तृत भूखण्ड छोड़ दिया जाता था जो ग्राम वासियों के कृषि के उपयोग में आता था। उस ग्राम में जितने परिवार होते थे उतने ही भागों में इस भूखण्ड को बांट दिया जाता था और प्रत्येक परिवार अपने अपने भूखण्ड में अनाज बोता काटता और तय्यार करता था परन्तु ये भूखण्ड उन परिवारों की मलकीयत या स्वत्व नहीं थे और नाहीं उनको यह अधिकार था कि वे अपने भूखण्ड को किसी बाहर वाले मनुष्य के हाथ बेच सकें। यह सारी ज़मीन ग्राम समिति की मलकीयत समझी जाती थी यदि किसी दूसरे को देना होता था तो ग्राम समिति की आज्ञा से वह दे सकता था। तथा किसी को यह अधिकार नहीं था कि अपनी ज़मीन को किसी के नाम वसीयत कर सके यहां तक कि अपने पुत्र को भी वसीयत करना किसी व्यक्ति के अधिकार में नहीं था। इस प्रकार की सब बातों में ग्राम समिति की सलाह लेनी पड़ती थी। अभि-प्राय यह है कि यह भूखण्ड ग्राम निवासियों की जीविका के लिये ही सुरक्षित रखा जाता था ताकि सभी ग्राम निवासियों का सुख से उदर पोषण हो सके और कोई भूखा न मर सके। जब खेती कट चुकती थी तो ग्रामाध्यक्ष की अध्यक्षता में वह सारा धान्य बाहर इकट्ठा किया जाता और सफा करवाया जाता था। अस्तु इस भूखण्ड के अतिरिक्त कुछ जंगल चरागाह के तौर पर छोड़ा जाता था इस में खेती नहीं हो

सकती थी इस में ग्राम के पशु चरते और दिनभर आराम करते थे। इस के अतिरिक्त एक चतुर्थ प्रकार की जंगली जमीन छोड़ दी जाती थी जिस में से ग्रामवासी अपने उपयोग के लिये लकड़ी घास आदि ला सकते थे इस में किसी का विशेष अधिकार नहीं था सभी को समानाधिकार प्राप्त था। इस से अनुमान किया जासकता है कि उन दिनों ग्रामवासी कितने सुखी थे।

उन दिनों के ग्रामवासियों के सामाजिक जीवन का वर्णन करते हुए रीजडेविड साहब कहते हैं वे लोग मिल कर अपने २ ग्रामों में अपनी ग्राम समिति के लिये भवन, ठहरने के लिये धर्म शालायें पानी के लिये तालाब आदि, शोभा के लिये मिलकर उद्यान, और अपने ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने वाली सड़कों की मुरम्मत आदि करते थे। वे ही आगे कहते हैं कि बौद्ध पुस्तकों से पता लगता है कि इस प्रकार के सामाजिक कामों में स्त्रियां भी भाग लेतीं थीं।

पाठक वर्ग! जरा सोचिये क्या इस प्रकार ग्रामसमिति द्वारा शासित होने वाले ग्रामों में आज कल के समान जमींदारों और काश्तकारों के कभी झगड़े हो सकते थे? क्या उन दिनों ग्रामीण लोग पटवारियों तहसीलदारों और मामलतदारों से इस प्रकार सताये जा सकते थे और क्या वे रात दिन की मुकदमाबाजी जो आज कल ग्रामों को शाप के समान सता रही है उन दिनों कभी अपना भयानक स्वरूप दिखा सकती थी? भारत के ग्राम जब तक इस प्रकार के प्रजातन्त्र शासन

से शासित होते रहे तब तक वे सचमुच सुख और ऐश्वर्य के धाम थे *।

नागरिक लोकसभायें तथा उन लोकसभाओं के न्यायालय:—प्राचीन धर्मग्रन्थों और स्मृतियों को पढ़ने वाले जानते हैं कि उस समय प्रत्येक नगर में नगर निवासियों की कई लोक सभायें होती थीं। जिन को गण, × पूग या संघ के नाम से पुकारा जाता था। यह नगर में सब से बड़ी सभा होती थी। सभी प्रकार के और सभी श्रेणियों के नगर निवासी इस के सभासद् होते थे।

---

* उपरोक्त प्रकरण में हम एक वाक्य मान० म०टी रंगाचारी के एक व्याख्यान से देते हैं जो उन्होंने २२ अप्रै० । १ । ८ को गोखले हाल में दिया था। उन्होंने प्राचीन ग्रामों के शासन के विषय में कहते हुए कहा। "As regards local matters, from ancient times there were series of portial isolated self governing village communitieso In the matter of taxation for local purposes,in the administration of justice all those were enforced in the village itself and they never had any external control. As regards central functions, protection of property and person, either in the provinces or in the nadas they were performed by this agents of the King,and the King lived a certain proportion of taxation, and the village community decided how best it should be given to the king.

× गण और पूग में इतना भेद मालूम होता है कि पूग में वणिक लोगों की मुख्यता होती थी और गण में अन्य ब्राह्मण आदि की।

इस से नीचे नगर में रहने वाली एक २ श्रेणी की अपनी २ पृथक् २ सभा होती थी । इस प्रकार वस्त्रकार, चर्मकार और शिल्पी आदि भिन्न २ श्रेणी वालों की अपनी २ सभा होती थी । इन को **श्रेणी सभा** के नाम से पुकारा जाता था ।

इस से नीचे एक रिश्ते वालों और रक्तजन्य सम्बन्ध वाले पुरुषों की अपनी २ एक सभा होती थी जिस को कुल सभा के नाम से कहा जाता था ।

इन श्रेणी सभाओं का एक बड़ा काम न्याय करना था इन सभाओं के न्यायालयों में उसी कुल उसी श्रेणी और उसी गण का कोई विद्वान् धार्मिक पुरुष न्यायाधीश बनाया जाता था। बाहर वालों को न्याय दिल-वाना अनुचित समझा जाता था । इन न्यायालयों को पहले राजा से स्वीकृति लेनी पड़ती थी और राज से स्वीकृति लेकर ही ये प्रामाणिक या Recongnised समझी जाती थीं । इस लिये शुक्राचार्य कहते हैं कि "इन सभाओं को न्याय देने का अधिकार तभी मिलता है जब इन को राजा की स्वीकृति मिल चुकी हो *" अर्थात ये हर एक लोकसभायें नगरों को राजा की ओर से दी जाती थीं । इन सब सभाओं से ऊपर नगर में एक न्यायाधीश होता था जो अध्यक्ष कहाता था और वह राजा की ओर से नियुक्त होता था । शुक्राचार्य कहते हैं कि इनका मुख्य कार्य न्याय देना था । प्रथम अभियोग कुल सभा के सामने पेश हो यदि मामला गहन हो और कुलसभा उसका ठीक विचार न कर

---

* राज्ञा: ये विदिता: सम्यक् कुल श्रेणि गणादय: । शुक्र.

सके तो वह अपनी श्रेणी सभा में प्रस्तुत हो यदि वह भी निर्णय देने में अपने को असमर्थ समझे तो गण सभा में प्रस्तुत हो । यदि गण भी उसका ठीक २ पता न लगा सके तो वह अभियोग अध्यक्ष के न्यायालय में प्रस्तुत हो । उस के आगे भी यदि अभियोग जाना चाहे तो सीधा राजा के न्यायालय में प्रस्तुत होना चाहिये + । इस लिये याज्ञवल्क्य कहते हैं कि कुल सभा के न्यायालय से श्रेणी सभा का न्यायालय ऊंचा है इस से ऊंचा गण सभा का न्यायालय है उस से ऊपर राजा के प्रतिनिधि भूत अध्यक्ष का न्यायालय है इस के बाद स्वयं राजा का न्यायालय है जो इन सब से ऊंचा हैं × । यदि कोई निचले न्यायालय के विरुद्ध अपील करना चाहता था तो उपरले २ न्यायालय में कर सकता था ।

इन नागरिक सभाओं तथा राजा के अध्यक्ष को वाग्दण्ड, धिग्दण्ड और देश निकाला देने तक का ही अधिकार दिया जाता था । इन सभाओं के न्यायालय की ओर से वधदण्ड नहीं दिया जा सक्ता था *।

\+ विचार्य श्रेणिभिः कार्यं कुलैर्यन्न विचारितम् ।
गणैश्च श्रेण्यविज्ञातं गणाज्ञातं नियुक्तकैः ॥
कुलादिभ्योऽधिकाः सभ्यास्तेभ्योऽध्यक्षोऽधिकः कृतः ।
सर्वेषामधिको राजा धर्म्याधर्म्ये नियोजकः ॥ शुक्रनीति.

× नृपेणाधिकृताः पूगाः श्रेणयोऽथ कुलानि च ।
पूर्वं पूर्वं गुरु ज्ञेयं व्यवहार विधौ नृणाम् ॥ याज्ञवल्क्य
कुलानि श्रेणयश्चैव गणश्चाधिकृताः नृपः ।
प्रतिष्ठा व्यवहाराणां गुर्वेषामुत्तरोत्तरम् ॥ नारद

* कुल श्रेणिगणाध्यक्षाः पुरदुर्ग निवासिनः ।
वाग्धिग्दण्डं परित्यागं प्रकुर्युः पापधर्मिणाम् । बृहस्तः

शंख लिखिताचार्य की सम्मति है कि राजद्रोह के अतिरिक्त शेष सब प्रकार के अपराधों का निर्णय इन सभाओं में हो सकता है + ।

उस समय इस बात का यत्न किया जाता था कि जो झगड़े या वादविवाद हों उनका निर्णय घर में ही हो जाय । इस लिये पहिले २ अभियोग कुल सभा में पेश होता था और यदि वहां निर्णय नहीं हो सकता था तो अपनी श्रेणी सभा के न्यायालय के सन्मुख रखा जाता था । उन का निर्णय अपने २ स्थानीय रिवाजों और अपनी श्रेणी में प्रचलित व्यवहारों के अनुसार होता था अर्थात सभी स्थानों पर एक ही राजनियम (Cod) के अनुसार फैसला हो यह कोई सिद्धान्त नहीं था प्रत्युत अपने माने हुवे धर्मशास्त्र और अपनी श्रेणी के रिवाजों (Customs) के अनुसार निर्णय होता था । शुक्राचार्य इस बात पर अत्यन्त बल देते हैं कि एक श्रेणी वालों का निर्णय दूसरी श्रेणी वालों के लिये पढ़ना सर्वथा असम्भव है अतः राजा को चाहिये कि वह उन का निर्णय उन्हीं श्रेणी वालों के न्यायालय से कराये और अपना कोई हस्ताक्षेप न करे । हां राजा का इतना ही काम है कि वह उन २ श्रेणियों में योग्य धार्मिक पुरुषों को न्यायाधीश नियत करे ।

\+ गण समय श्रेणिपूग चरण व्यवहार निष्ठाः स्वामिनःपरिज्ञातारोऽन्यत्र राजाभिद्रोहात् । किन्तु शुक्राचार्य कहते हैं—

साहसस्तेयवर्ज्यानि कुर्युः कार्याणि ते नृणाम् ॥

इस से मालूम होता है कि श्रेणी सभाओं में न्यायाधीशों को नियत करना राजा के हाथ में था परन्तु राजा उनके किये हुए निर्णयों और फैसलों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। और इस प्रकार वे श्रेणियां नियमों के अनुसार फैसला देने में पूर्ण स्वतन्त्र थीं +। शुक्राचार्य कहते हैं कि इन न्यायाधीशों के साथ ३, ५ या ७ अच्छे प्रतिष्ठित और व्यवहार चलाने योग्य विद्वान् सभ्यों की सभा हो जिस को हम जूरी कह सकते हैं। इस सभ्यों का नियत करना भी राजा के हाथ में था। क्या पाठकवर्ग ठीक इङ्गलैण्ड में यही पद्धति काम में नहीं लाई जारही है। वहा भी न्यायाधीशों का नियत करना प्रबन्ध विभाग के हाथ में हैं परन्तु उनके दिये निर्णयों में हस्ताक्षेप करने का कोई अधिकार उन को नहीं है। तथा जिस प्रकार सभ्य देशों में आज जूरी द्वारा निर्णय कराया जाता है उसी प्रकार ठीक २ न्याय देने के लिये ३, ५ या ७ सभ्यों की एक सभा नियम की जाती थी *।

\+ कीनाशाः कारुकाः शिल्पिकुसीदिश्रेणिनर्तकाः।
लिंगिनस्तस्करा कुर्युः स्वेन धर्मेण निर्णयम्॥
अशक्यो निर्णया ह्यन्यैस्तज्जैरेव तु कारयेत्।
तत्रत्य गुण दोषाणां त एव हि विचारकाः।
राजा तु धार्मिकान् सभ्यान्नियुञ्ज्यात्सुपरीक्षितान्॥

* जूरी द्वारा न्याय करने का तरीका भारत वर्ष का ही आविष्कार है इस लिये N.B. Pagee का Self government in India के ३१२ पृष्ठ पर अन्य कुछ साक्षियां पाठकों को द्रष्टव्य है।

परन्तु भारतवर्ष आजकल के सभ्य देशों से भी एक कदम आगे था। शुक्राचार्य कहते हैं कि उस श्रेणी में यदि कोई भी धर्मज्ञ पुरुष हो यदि वह सभा का सभ्य नहीं भी है तो भी उस को इस सभा में आकर सम्मति प्रगट करने का अधिकार है +। प्राचीन भारत में धर्म और धार्मिक पुरुष का सभी जगह निर्विघ्न प्रवेश था। यदि कोई धर्मज्ञ पुरुष देखता था कि जूरी भी अन्याय कर रही है तो सभ्य न होते भी उस को अधिकार था कि वह उस का प्रतिवाद करे।

इस जूरी को नियत करना भी राजा के हाथ में था। शुक्राचार्य कहते हैं कि राजा अपनी २ जाति के न्यायाधीशों के लिये उसी जाति में से ऐसे पुरुषों को जूरी में नियत करे जो पुरुषार्थी हों और काम क्रोध और लोभ के वश में आने वाले न हों *।

इन सभाओं का केवल न्याय देना ही एक काम नहीं था किन्तु आर्थिक उपयोग भी इन की बड़ी उपयोगिता थी। अपने व्यापार की उन्नति के लिये और शिल्प आदि की वृद्धि के लिए नियम आदि बनाना इन के अधिकार में था। भट्टोजिदीक्षित अष्टाध्यायी के एक सूत्र का अर्थ करते हुये पूग शब्द का अर्थ करते हैं कि "भिन्न २ जाती वालों के और भिन्न २ पेशे वालों के विशेषतः धन

+ अनियुक्तो वा नियुक्तो वा धर्मज्ञो वक्तुमर्हति।

* निरालसा जितक्रोध कामलोभाः प्रियंवदाः।
राज्ञा नियोजितव्यास्ते सभ्याः सर्वासु जातिषु॥

प्राप्ति के लिये जो संघ बनते हैं वे पूग कहाते हैं।" जिस से मालूम होता है कि केवल न्याय देना ही इन का मुख्य प्रयोजन नहीं था किन्तु नगर सम्बन्धी आर्थिक बातों में भी ये पूर्ण स्वतन्त्र थे + ।

परन्तु इन लोकसभाओं का शासन में भी बहुत कुछ भाग रहा है। महाभारत के समय के गणों को बहुत शक्ति प्राप्त थी। उस समय अनेक गण सभायें होती थीं और सब पर एक मुख्य सभा होती थी जिस में इन गणों के प्रतिनिधि या मुखिया लोग बैठते थे :: और इन गणों के मुखिया लोगों की सभा में बड़ी शक्ति थी। इससे ज्ञात होता है कि गुप्तचर नियत करना, मिल कर शासन सम्बन्धी विचार करना और अपना कोष एकत्रित करना इत्यादि भारी उतरदातृत्व के काम भी उस समय गण सभायें कर सकती थीं ×।

व्यास कहते हैं कि इन गणों के मुखिया लोगों की सभा जो मन्त्र या विचार करे उसको गण के सर्व साधारण लोग नहीं सुन सकते। अतः अवश्य यह सभा प्रबन्ध कारिणी सभा ही होगी * ।

\+ पूजाऽग्योग्रामणीपूर्वात् "नाना जातिया अनियत वृत्तयोऽर्थ काम प्रधाना पूगाः, संघाः ॥

:: गणमुख्यैस्तु सम्भूय कार्यं गणहितं मिथः ।

× चारमन्त्रविधानेषु कोष सन्निचयेषु च ।
नित्य युक्ता महाबाहो वर्धन्ते सर्वतो गणाः ॥

* न गणाः कृत्स्नशो मन्त्रं श्रोतुमर्हन्ति भारत
गणमुख्यैस्तु सम्भूय कार्यं गणहितं मिथः ॥ शान्ति १०७।

इन गण सभाओं के सभासद् भी नगर भर के चुने हुए पुरुष होते होंगे। गण के सभ्यों के लिये व्यास लिखते हैं कि वे धनी वीर और शास्त्रज्ञ हों तथा भली प्रकार वेदादि में निष्णात हों +।

इस प्रकार उस समय इन गणों के हाथ में अपने न्यायालयों द्वारा जहां न्याय देने का अधिकार था वहां साथ ही शासनाधिकार भी था ÷।

राजा और गण सभा:—राजा लोग इन गणों की अवहेलना नहीं कर सकते थे। जिस नियम को वे अपने लिये उपयोगी समझते थे राजा को भी वह स्वीकार करना पड़ता था ×।

अन्तिम अपील जब राजा के पास जाती थी और राजा को न्याय देना होता था तो उसको उनके देश जाति और कुल के अपने नियमों के अनुसार ही निर्णय देना होता था। शुक्राचार्य कहते हैं कि वह देश जाति और कुलों के नियमों को तोड़ने का यत्न न करे उनका पालना उसका काम है यदि वह ऐसा नहीं करेगा और प्रजा के बनाये नियमों को स्वेच्छया तोड़ना चाहेगा तो प्रजायें विक्षुब्ध हो जायगीं ::।

\+ द्रव्यवन्तश्च शूराश्च शास्त्रज्ञाः शास्त्रपारगाः
कृच्छ्रास्वापत्सु सम्मूढान् गणाः सन्तारयन्ति ते॥

÷ धर्मिष्ठान्व्यवहारांश्च स्थापयन्तश्च शास्त्रतः
यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमाः॥ शा० १०७॥

× यो धर्मः कर्म यच्चैषां मुपस्थानविनिश्चयः
यच्चैषां वृत्युपादान मनुमन्येत तत्तथा॥ शुक्र०

:: देशजाति कुलानां च ये धर्माः प्राक् प्रकीर्तिताः
तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा। शुक्र०

गणों के हाथ में कितनी शक्ति थी यह व्यास के एक वाक्य से पता लग सकता है वे एक स्थान पर कहते हैं कि राजा वृथा ही राष्ट्र में क्रोध, भय और दण्ड नहीं दिखाये नाहीं वृथा प्रजा को सताये क्योंकि इन सब बातों से गण असन्तुष्ट हो जाते हैं आगे वे कहते हैं कि इस लिये राजा को चाहिये कि वह गणों के मुखिया लोगों का सन्मान करे उसकी प्रजा प्रियता इन्हीं पर मुख्यतः निर्भर है *।

समूह-हितवादीः— व्यास इस के वाक्य से कि "गण मुख्यैस्तु सम्भूय कर्तव्यं गणहितं मिथः" हमने अनुमान निकाला था कि गणों के कुछ चुने हुए मुखिया लोगों की एक सर्वोपरि शासक सभा बनाई जाती थी जो शायद प्रबन्धकारिणी सभा (executive council) का काम करती होगी। इस अनुमान की पुष्टि बृहस्पति और याज्ञवल्क्य के वाक्यों से हो जाती है। ये लोग इस सभा को **समूह-हितवादी** के नाम से पुकारते हैं याज्ञवल्क्य कहते हैं कि इस सभा के दो तीन या पांच सभासद् हों और ग्राम, श्रेणी और गणों को चाहिये कि जिस प्रकार इन की आज्ञायें हों उनको यथावत् पालें × ।

इस से दो बातें सिद्ध होती हैं एक तो यह कि इस समय में बहु सम्मति द्वारा निर्णय होता था इसी लिये तीन और पांच ऐसी अयुग्म संख्यायें रखी गई हैं क्योंकि यदि ४ या ६ सभासद् रखे जाते तो दोनों पक्षों के बराबर बराबर हो जाने से बहुसम्मति का पता नहीं लग सकता

---

* क्रोधो भेदो भयं दण्डः कर्षणं निग्रहोवधः
नयत्यरिवशं सद्यो गणान् भरत सत्तम ॥
तस्मान्मानयितव्यास्ते गण मुख्याः प्रधानतः
लोकयात्र समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव ॥

× द्वौ त्रयः पञ्च वा कार्याः समूहहितवादिनः
कर्तव्यं वचनं तेषां ग्रामश्रेणि गणादिभिः ॥

था । दूसरा इनकी आज्ञा को राज नियम या गवर्नमेन्ट आर्डर समझा जाता था । इसी लिये याज्ञवल्क्य कहते हैं कि समूह-हित-वादिनी सभा की आज्ञा सभी को पालनी चाहिये जो नहीं पाले वह दण्डनीय है । +

समूह-हित-वादिनी सभा जो नियम बनाती होगी उस में सर्व-साधारण जनता की सम्मति की पर्वाह अवश्य की जाती होगी । क्योंकि हमने ऊपर कहा है कि अनुमानतः गण सभाओं में से चुने हुए दो तीन या पांच मुख्य लोगों की ही यह सभा होती थी । और वे गणों के मुखिया हो कर गणों की प्रसन्नता और उन्नति की अवश्य ही प्रबल इच्छा रखते होंगे । दूसरा इस सभा का नाम ही ऐसा है कि वह अवश्य समूहों, गणों या संघों का हित ही करती होगी ÷ ।

\+ कर्त्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहित वादिनाम्
यस्तत्र विपरीतः स्यात्सदाप्यः प्रथमं दमम् ॥

÷ Mimansa rule of interpretation में इस समूह हितवादी सभा को पार्लियामेन्ट कहा है वहां लिखा है " All questions of public utility should be submitted to the decision of the public assembly (Samuha hitvadi) and their decision shall carry the wieght of law any one acting in direct constravention of such a decision shall be lible to fine,, आगे लेखक कहता है "The executive committee of such assembly should consist of men pure in conduct and well versed in the Vedas and who would be above all greed and corruption and the assembly should carry out their arders without the least questioning ,, पर हमारी सम्मति में गणसभायें ही स्थानीय पार्लियामेन्ट का काम दे देती थीं अन्य किसी पार्लियामेन्ट की आवश्यकता नहीं थी । समूह तितवादी दो, तीन पांच ही होते थे अतः यह executive committee या गण सभाओं के ऊपर प्रबन्ध कारिणी सभा ही मालूम होती है ।

इन सभाओं से राजा का सम्बन्धः—राजा इन सभाओं का रक्षक माना जाता था। नारद कहते हैं कि राजा को श्रेणी, पूग और गण आदियों के बनाये हुए नियमों की सदा रक्षा करनी चाहिए ×। इस लिये (१) राजा इन सभाओं का रक्षक माना जाता था।

(२) यदि कोई मनुष्य इस प्रकार के संघो से किसी प्रकार की प्रतिज्ञा कर लेता था और पीछे लोभ के कारण अपनी प्रतिज्ञा से मुकरता था अथवा किसी अन्य प्रकार से संघ के बनाये नियमों की अवहेलना करता था तो राजा का यह काम था कि वह उस को दण्ड दे और कठोर दण्ड दे *। स्मृतियों से पता लगता है कि गणों को धोखा देने वाले और इन संघों को हानि पंहुचाने वालों को घोर अपराधी समझा जाता था और इस लिये इन को दण्ड भी कठोरतर दिया जाता था। याज्ञवल्क्य कहते हैं यदि कोई गण सभा के कोष में से धन चुराये या उस से किसी प्रकार की प्रतिज्ञा करके उसे तोड़े तो राजा को चाहिये कि उसका सर्वस्व लेकर उसको देश से निकाल दे +।

× पाषण्ड नैगम श्रेणी पूग व्रात गणादिषु।
संरक्षेत्समयं राजा दुर्गे जनपदे तथा॥ नारद।

* योग्राम देश संघानां कृत्वा सत्येन संविदम्।
विसंवदेन्नरो लोभात् तं राष्ट्राद्वि प्रवासयेत्॥ याज्ञ०।

\+ गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेत्तु यः।
सर्वस्व ग्रहणं कृत्वा तं राष्ट्रा द्विप्रवासयेत्॥ याज्ञ०।

कात्यायन और बृहस्पति बड़े रोष से कहते हैं कि जो पुरुष इन गणों के द्रव्य को लूटे या चुराये या किसी प्रकार हानि पहुंचाये और जो परस्पर इन गणों को लड़ाये और जो इन गणों के या राजा के विरुद्ध विद्रोह करे इन सब को राजा का काम है कि देश से बाहर निकाल दे × ।

(३) यदि इन गणों का परस्पर कोई झगड़ा होता था तो राजा को हस्ताक्षेप करना होता था और उसका उचित निर्णय करना होता था ÷ ।

(४) जब इन गणों का अपने मुखिया लोगों से कोई बड़ा विवाद या झगड़ा होता था उस समय राजा को हस्ताक्षेप करना होता था * ।

(५) जब इन संघों में बहुसम्मति, अल्पसम्मति minority या किसी विशेष व्यक्ति को अनुचित क्लेश पहुंचाने का यत्न करती थी उस समय राजा को अधिकार था कि वह बहुसम्मति के अत्याचार को रोके और अल्पसम्मति या उस समय विशेष व्यक्ति की रक्षा

× साहसी भेदकारी च गणद्रव्य विनाशकः ।
उच्छेद्याः सर्व एवैते विख्याप्यैवं नृपैर्भृगुः ॥ कात्या.
श्रेणी पूग नृपद्वेष्टा क्षिप्रं निर्वास्यते पुरः ॥ बृह०

÷ पृथग्गणाश्च ये भिन्द्युस्ते विनेया विशेषतः ।

* मुख्यैः सह समूहानां विसंवादो यदा भवेत् ।
तदा विचारयेद्राजा स्वधर्मे स्थापयेच्च तान् ॥ बृह०

करे + । एक राजनीति विशारद अंग्रेज़ ने लिखा है " It is bad to be opprssed by a minority, but it is worse to be oppressed by a majority, for there is a reserve of latent power in the masses which it is called in to play, the minority can seldom resist, but from the absolute will of an entire people there is no appeal no redemption no refuge but reason. ' इस से पता लग सकता है कि अल्पसम्मति वालों का अत्याचार इतना दुःसह नहीं होता जितना कि बहुसम्मति वालों का किया हुआ अत्याचार दुःसह है क्योंकि अल्पसम्मति वालों के अत्याचार की औषध, तो कभी न कभी हो ही जाती है परन्तु बहुसम्मति वालों की कोई औषधि ही नहीं । किन्तु हम देखते हैं कि इस उपरोक्त नियम के अनुसार प्राचीन भारत में यदि अल्प सम्मति वालों पर कोई अनुचित अत्याचार होता था तो उस को रोकने का अधिकार राजा को मिला हुआ था ।

इस प्रकार कुछ बातों में राजा को हस्तक्षेप करना पड़ता था और अपना स्वतन्त्र निर्णय देना होता था । किन्तु यह बात स्पष्ट है कि राजा लोग इन समूहों और लोकसभाओं का अत्यन्त मान करते थे । जब इन सभाओं के प्रतिनिधि राजा के पास जाते थे तो राजा उनकी बड़ी पूजा करता था और जो कुछ वे कहने आते थे उसको स्वीकार कर बड़े सम्मान पूर्वक दान आदि देकर उनको विदा करता था * । और यह धन उन विशेष व्यक्तियों का नहीं प्रत्युत सारे गण

\+ बाधां कुर्युर्यदेकस्य सम्भूता द्वेषकारिणः ।
राज्ञा ते विनिवार्यास्तु शस्याश्चैवानुबन्धिनः ॥ याज्ञ०

* समूह कार्य मायातान् कृतकार्यान्विसर्जयेत् ।
सर्वदामान सत्कारैः पूजयित्वा महीपतिः याज्ञ.

का समझा जाता था। गण के प्रत्येक व्यक्ति का उस गण के धन पर समान अधिकार था +।

इस के साथ यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि इन संघो और लोकसभाओं के सब सभासदों के अधिकार समान समझे जाते थे। इन में ऊंच और नीच के भाव नहीं थे। इस लिये पाणिनि मुनि संघ का अर्थ करते हुए कहते हैं "संघे चानौत्तराधर्ये" अर्थात् संघ में परस्पर ऊंच और नीच का भाव नहीं होता शायद कहा जाय कि संघ में तो सम्भव है कि कोई ऊंच नीच का भाव न हो परन्तु गण में ऊंच नीच का भाव तो हो सकता था परन्तु यह भी भ्रान्ति है हम पहले कह चुके हैं कि संघ और गण पर्याय वाचक शब्द हैं और इन में कोई भेद नहीं है। पाणिनि मुनि भी इस में प्रमाण है वे कहते हैं "संघोद्घौ गण प्रशंसयोः" अर्थात् संघ शब्द का अर्थ पाणिनि गण ही कहते हैं।

अतः पता लगता है कि गण सभाओं में भी जिन में नगर के सभी श्रेणियों और सभी जातियों के भिन्न २ प्रकार के पुरुष सभ्य बन कर बैठते थे सब को समान अधिकार वाला समझा जाता था और जातियां जन्म की दृष्टि से वहां कोई ऊंच नीच का भाव नहीं समझा जाता था।

\+ समूहकार्य प्रहितोयल्लभते तदर्पयेत्।
एकादश गुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत्स्वयम्॥
आगे कहा है:—
धनं प्राप्तं रक्षितं च गणार्थं वा प्रकल्पितम्
राज्यप्रसाद् लब्धं च सर्वेषामेव तत्समम्॥

रामायण के समय गण और श्रेणी सभायें, तथा राज परिषद् में उन गणों के प्रतिनिधि:—महाभारत के समय इस प्रकार की लोक सभायें तो थीं ही परन्तु रामायण के समय भी लोक सभायें वर्तमान थीं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि रामायण के समय केवल स्थानीय शासन ही प्रजातन्त्र था और मुख्य गवर्नमेन्ट (Central govt) प्रजातंत्र नहीं थी। रामायण को भली प्रकार अध्ययन करने वाले को पता लगेगा कि उस समय नीचे से लेकर ऊपर तक सारी गवर्नमेन्ट प्रजासत्तात्मक थी। हमने पहले सिद्ध किया है कि रामायण के समय जो राजपरिषत् थी उसमें सर्वसाधारण लोगों के प्रतिनिधि भी बैठते थे। यहां हम यह दिखाना चाहते हैं कि वे प्रतिनिधि कैसे चुने जाते थे।

इन गणों का काम था कि वे अपने मुखिया लोगों को प्रतिनिधि के तौर पर परिषद् में भेजे। अर्थात् इन्हीं गणों के मुखिया लोग ही राजपरिषत् में सर्वसाधारण लोगों के प्रतिनिधि का काम देते थे।

महाराज दशरथ की मृत्यु के पश्चात् जब वसिष्ठ परिषत् का अधिवेशन करना चाहते हैं तो वे दूतों को सभ्यों के बुलाने के लिये सर्व दिशाओं में भेजते हैं वे उस समय कहते हैं।

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् योधान् अमात्यान् गणवल्लभान्।
क्षिप्रमानयताव्यग्राः कृत्यमात्ययिकं हि नः॥ अयो० ८२। १२

हे दूतो जाओ विद्वान् ब्राह्मणों, वीर क्षत्रियों, सेना के प्रधान लोगों, मंत्रि मण्डल के सदस्यों, और गणों के मुखिया लोगों को

शीघ्र ही यहां पर बुलाकर ले आओ और उन से कहो कि एक अत्यन्त आवश्यक कार्य आन पड़ा है।

इसके अतिरिक्त उस समय गणों के मुखिया लोगों को प्रत्येक राजकीय स्थान में मुख्य स्थान दिया जाता था। जिस समय राम के राज्याभिषेक की सब तैय्यारियां हो चुकीं थीं उस समय वसिष्ठ सूत द्वारा दशरथ को कहला भेजते हैं कि "आप पधारिये क्योंकि आचार्य, विद्वान् ब्राह्मण, अन्य प्रतिष्ठित गण्य मान्य व्यक्ति तथा गणों को साथ लेकर उन के मुखिया लोग सब अभिषेक मण्डप में एकत्रित हो चुके हैं * ।

अर्थात् ब्राह्मण सभा के सदस्यों और आचार्यों के साथ ही गणों के मुखिया लोगों का भी स्थान था। इस प्रकार रामायण में स्थान २ पर इन गणों के मुखिया लोगों का राज्य में प्राधान्य पाया जाता है। हां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि रामायण में गणों को अनेक स्थान पर "निगम" के नाम से पुकारा है जिसका अर्थ है समूह, और उन नियमों के मुखिया लोगों को नैगम के नाम से लिखा गया है + ।

---

* आचार्या ब्राह्मणा गावः पुण्याश्च मृगपक्षिणः ।
पौरजानपद श्रेष्ठा नैगमाश्च गणैः सह ॥ १४ । ४१ अयोध्या०

\+ अमात्या बल मुख्याश्च मुख्या ये निगमस्य च ।
राघवस्याभिषेकार्थे प्रीयमाणाः सुसंगताः ॥
१५ ॥ २ । अयोध्या० ।

इसी प्रकार राम को देखने जाते समय कहा है:—
ये च तत्र परे सर्वे सम्मत्य ये च नैगमाः ।
समं प्रतिययु हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयस्त था ॥ ८३ । ११
तथा..................
ब्राह्मणा बल मुख्याश्च नैगमाश्चा गतास्त्विह । १५ । २३ ।

हमने पहले कहा है कि गण सभाओं के नीचे प्रत्येक नगर में भिन्न २ प्रकार के मनुष्यों की श्रेणियों की अपनी २ एक सभा हुआ करती थी। उसी प्रकार रामायण के समय गण सभाओं के अतिरिक्त श्रेणी सभायें भी थीं जिनका वर्णन अनेक स्थानों पर आया है। इन श्रेणियों के मुखिया भी होते थे जो इन श्रेणियों में सभापति का काम करते थे ×। इस प्रकार रामायण के समय प्रजातन्त्र शासन का एक सर्वांग सुन्दर चित्र दिखाते हैं।

सीलोन के प्राचीन इतिहास में भी इस प्रकार की लोकसभा का वर्णन पाया जाता है। उस से पता लगता है कि वहां प्रत्येक ग्राम में सर्वसाधारण लोगों की एक सभा होती थी जो ग्राम में सर्व प्रकार के नियन्त्रण का कार्य करती थी। इस ग्राम सभाओं से ऊपर एक प्रान्तीय सभा थी उस में प्रान्त भर के ग्रामों के मुखिया लोग एकत्रित होते थे। जब किसी ग्राम में चोरी, घात या कोई अन्य बड़ा अपराध होता था और स्थानीय अधिकारी उसका पता नहीं लगा सकते थे तो प्रान्तीय सभा एक विचित्र प्रकार से उसका पता लगवाती थी और जिसका धन नष्ट होता था उसको सन्तुष्ट करती थीं।

× भरत से वसिष्ठ कहते हैः—

अभिषेचनकं सर्वं मिदमादाय राघव।
प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज॥
म त्वा प्रकृतयः सर्वा श्रेणी मुख्याश्च भूषिताः
अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजान पदास्तदा॥ २६ १४।

प्रान्तीय सभा की ओर से उस ग्राम के नाम पर एक शासन पत्र निकलता था कि उस ग्राम के वासी अमुक दिन तक अपराधि का पता लगावें और उसको यथोचित दण्ड दे दें। यदि नियत अवधि तक उस अपराधी का पता न लगता था तो प्रान्तीय सभा की ओर से एक जुर्माने की राशि नियत होती थी और वह उस ग्राम को भरना पड़ता था † । ग्राम वालों के प्रबन्ध की न्यूनता के कारण ही चोरी अथवा अन्य अपराध होता है इस लिये ग्राम वालों को इस प्रबन्ध का दण्ड देना प्रान्तीय सभा का काम था जिस से पता लगता है कि ग्राम का सारा प्रबन्ध ग्राम वालों के ही हाथ में था। अन्यथा यदि प्रबन्ध उनके हाथ में नहीं था तो उन पर जुर्माना नहीं लगाया जा सकता था। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि वह जुर्माना किसी दूसरे की ओर से नहीं लगाया जाता था परन्तु एक ऐसी सभा की ओर से लगाया जाता था जिस में उस ग्राम के भी प्रतिनिधि सभासद् के तौर पर बैठते थे।

इस प्रकार की अनेक ऐतिहासिक साक्षियों से सिद्ध होता है कि भारत में किसी न किसी रूप में प्रजातन्त्र शासन चिरकाल तक

---

† Public administration in ancient India में प्रमथनाथ बैनर्जी इस प्रकार के दो एक प्राचीन लेख उद्धृत करते हैं जिस में देसगांव नामक एक गांव के प्रति प्रान्तीय सभा की ओर से इस प्रकार का एक आज्ञा पत्र निकला था "If the offenders are not detected the inhabitants of the Dasgam shall find them and have them punished within fortifive days, should they not find them then the Dasgam shall be made to pay a fine of 125 kalandas of gold to the state"

वर्तमान रहा है । एक सत्ताधिकारी राजा से शासित होने वाले राष्ट्र में भी एक सत्ता और प्रजासत्ता का एक ऐसा अमृतमय सम्मिश्रण रहा है कि जिस में जहां एक तरफ एक सत्ता से उत्पन्न होने वाले अनर्थ राष्ट्र को सन्तप्त नहीं कर सकते थे वहां दूसरी ओर प्रजा सत्ता से उत्पन्न होने वाले वे कतिपय भयानक अनर्थ जो आज अमरीका आदि राष्ट्रों में भयानक रूप धारण कर रहे हैं उस समय अपना भयानक रूप नहीं दिखा सकते थे । यह एक ऐसी विचित्र शासन पद्धति थी कि इस में जहां एक ओर राजा आजकल के पार्लियामेन्ट से शासित होने वाले देशों के राजाओं के समान एक नाम मात्र राजा नहीं होता था प्रत्युत क्रियाशील, राष्ट्र में सर्वोपरि शिरः स्थानीय और स्वतंत्र सम्मति रखने वाला एक व्यक्ति था वहां दूसरी ओर प्रजा भी आजकल के एक सत्ताक ज़ार के राज्य में रहने वाली प्रजा के समान न थी और आजकल के भारत में रहने वाली प्रजा के समान भय-भीत और शासन के सर्व अधिकारों से वञ्चित प्रजा नहीं थी प्रत्युत निर्भय होकर स्वतंत्र सम्मति प्रगट करने वाली और अपने शासन में पूर्ण अधिकार रखने वाली प्रजा थी ।

राजा लोग स्वतंत्र सम्मति रखते हुए भी प्रजाओं की अवहेलना नहीं कर सकते थे । और यदि वे कभी प्रजा की आवाज को दबाने का यत्न करते थे तो प्रजा उनको सिंहासन से च्युत कर सकती थी ।

चोलराज्य में प्रजातन्त्र शासन:- उत्तर भारतवर्ष के राष्ट्रों में केवल लोक सभाओं की साक्षियां नहीं पाई जाति परंतु दक्षिण भारत के अनेक राष्ट्रों के इतिहासों में प्रजातंत्र शासन की साक्षियां पाई

जाती हैं। दक्षिण में चोल राजाओं के अनेक शिला लेख पाये जाते हैं जो उस समय के प्रजातंत्र शासन की प्रबल साक्षी देते हैं। चोल महाराजा राजराजा (९८५ई०--१०१३ई०) प्रथम के शिला लेख जो तञ्जोर में पाये गये हैं उन से पता लगता है कि उस समय १५० से अधिक ग्रामों में वहीं की लोकसभाओं द्वारा शासन होता था तथा अन्य चालिस ग्रामों में ग्रामवासी स्वयमेव मिलकर किसी बाह्य सहायता के बिना अपने ग्राम का सारा प्रबन्ध करते थे + ।

इस दृष्टि से चोल राजा परान्तक प्रथम (९०७-९४८) के शिलालेख अमूल्य हैं। उन से इस विषय पर जो प्रकाश पड़ता है

÷ हीरेन्द्रनाथ दत्त Hinduism में इसी विषय पर कहते हुए लिखते हैं " A King in India was not a mere figure head, but the very life of his people, he is mirror of the people. One of the people though above of the people. His chief duty is protection: to protect his subject who are his children. The king so long he is able to keep the ideal of king ship. There have been many cases where kings were dethroned by the people—the King makers. Long before Europe and America had heard of such a thing, the voice of the people was all powerful in India"

‡ "self government in India vedic and pastvedic,, by Mr. Paygee (166 Page. 1. Edition)

अन्य किसी स्थान से सम्भवतः ऐसा प्रकाश अब तक नहीं पड़ा है । भारत वर्ष के इतिहास का लेखक विन्सेन्ट स्मिथ भी इस बात को मानता है कि उस समय की नियमित लोक सभायें या पञ्चायतें किस प्रकार स्थानीय शासन प्रबन्ध और न्याय प्रबन्ध करती थी इस का विस्तार से परिचय देने के कारण ये शिलालेख अमूल्य हैं । परान्तक प्रथम के लगभग ४० शिला लेख पाये गये हैं वे जो कि सब तामिल में हैं । इनके साथ ही दसवीं शताब्दी के उत्कल शिला लेख भी प्रजा-तन्त्र शासन को प्रबल साक्षी देते हैं । जिन को देखकर अन्धा भी कह सकता है कि प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र शासन पद्धति एक साधारण और प्रतिदिन की बात थी ।

इन शिलालेखों से जहां अन्य बहुत कुछ पता लगता है वहां यह भी विस्तार से पता लगता है कि उस समय एक महा सभा या सर्व साधारण लोक सभा होती थी । ये महा सभा कई समितियों की बनी होती थी जिन में से ६ का नाम मिलता है (१) वार्षिक निरीक्षक समिति (Annual supervision committee, (२) जलाशय निरीक्षक समिति (Tank supervision committee)

(३) उद्यान निरीक्षक समिति (Garden svpervision committee

(४) न्याय निरीक्षक समिति (justice supervision com.)

(५) सुवर्ण निरीक्षक समिति (Gold supervision committee)

(६) पञ्चवार वारियम समिति (उपरोक्त पांचों समितियों का निरी-क्षण करने वाली समिति)

सर्व साधारण महा सभा के काम को इन उपर्युक्त ६ कमेटियों

में विभक्त किया गया था। पेगी अपनी प्रशस्त पुस्तक में लिखते हैं कि प्रति वर्ष इन समितियों के सभ्यों का चुनाव होता था और प्रति सभ्य का काम था कि वह अपने काम का सारा हिसाब सर्व साधारण लोक सभा के सन्मुख प्रस्तुत कर ‡।

इन सभ्यों के चुनने के लिये ठीक बहुत कुछ वही विधि कार्य में लाई जाती थी जो आज कल सभ्य देशों में राजसभाओं के सदस्यों के चुनने के लिये काम में लाई जाती है। राज्य के भिन्न २ विभाग अनेक उपविभागों में विभक्त किये जाते थे और उन विभागों में रहनें वालों को अधिकार था कि वे किसी को महासभा के लिये अपना प्रतिनिधि चुने। उदाहरण के लिये इन शिला लेखों में उत्तर मल्लूर का नाम आया है और लिखा है कि वह ३० उपविभागों में बांटा गया है और प्रत्येक उपविभागों में रहने वाले व्यक्ति एकत्रित हों और अपने प्रतिनिधियों को चुने †।

प्रतिनिधि शासन भारत में चिरकाल से वर्तमान था इस बात की सिद्धि के लिये इस से भी अधिक प्रबल तथा स्पष्ट प्रमाण हो सकता है ! क्या इसको देख कर भी कोई बुद्धिमान् पुरुष कह सकता है कि भारत में प्रजातन्त्र शासन उन्नीसवीं शताब्दी से पहले सर्वथा अज्ञात था !।

इतना ही नहीं इस महासभा के सदस्य बनने के लिये योग्य से योग्यतम व्यक्तियों को चुनने के लिये पूर्ण यत्न किया जाता था।

‡ Self government Vedic and past vedic 169,170 Page

† "Self Government vedic and past vedic in India" by Paygee (171 Page)

उस समय भारतीय विद्वान् इस बातको मानते थे कि प्रजातन्त्र शासन पद्धति योग्यतम शासन पद्धति है परन्तु जब तक योग्यतम व्यक्ति ही राजसभाओं और राजकीय पदों पर न हों तब तक प्रजातन्त्र शासन पद्धति का पूर्ण लाभ नहीं हो सकता । इस लिये योग्यतम व्यक्ति राजसभा में आसकें इस के लिये इन लेखों में बडे बडे नियम पाये जाते हैं । इन नियमों से पता लगता है कि वेद के जानने वाले धार्मिक और सदाचारी पुरुषों को ही जिस प्रकार प्राचीन सम्मतियों और सूत्र ग्रन्थों के समय राजसभाओं में स्थान दिया जाता था उसी प्रकार चोल राज्य में भी इस प्रकार के पुरुषों को ही प्रतिनिधि चुना जाता था । किस प्रकार के पुरुषों को महासभा में प्रतिनिधि बना कर भेजा जा सकता था उसकी शर्तें निम्नलिखित हैं ।

(१) जो पुरुष भूमिकर (टैक्स) देने वाली $\frac{१}{४}$ वेली से ऊपर की ज़मीन का स्वामी हो । (वेली=६$\frac{२}{३}$ एकड़)

(२) जिस पुरुष का अपनी निज की भूमि पर अपना निज का हक गृह हो ।

(३) जो पुरुष ३० वर्ष से न्यून तथा ७० वर्ष से ऊपर की आयु का न हो ।

(४ जो मन्त्र और ब्राह्मण जानता हो तथा इन को पढ़ा सकता हो ।

(५) जो पुरुष $\frac{१}{८}$ वेली भूमि से कम $\frac{१}{४}$ वेली भूमि तक का चाहे स्वामी भी हो परन्तु यदि वह एक वेद तथा चार भाष्यों में से एक भाष्य जानता हो और भली प्रकार उस की व्याख्या कर सकता हो तो वह भी प्रतिनिधि चुना जा सकता है ।

(६) यदि कोई अच्छा व्यापारी हो तथा धार्मिक नियमों के अनुसार अपना आचार व्यवहार रखता हो ।

(७) जिसने सत्यता पूर्वक धन उपार्जन किया हो, जिसका मन पवित्र हो और जो पिछले तीन वर्षों से किसी महासभा की कमेटी में न रहा हो वह पुरुष इन सभाओं के लिये प्रतिनिधि चुन कर भेजा जासकता है । (प्रतिवर्ष राजकीय पदाधिष्ठितों का परिवर्तन आवश्यक समझा जाता था किन्तु हां तीन वर्ष के बाद वही व्यक्ति फिर भी चुना जा सकता था *)

इन नियमों को पढ़ने से पता लगता है कि वे लोग प्रजातंत्र शासन या प्रतिनिधि शासन के रहस्यों को पूर्ण तौर से जानते थे । प्रजातंत्र शासन में जो अनर्थ हो सकते हैं उनका उन्होंने बड़ी बुद्धि-मत्ता से इन नियमों द्वारा निराकरण किया था । इस प्रकार के नियम बनाने वाले विद्वानों को यदि कहा जाय कि वे प्रजातंत्र शासन पद्धति को सर्वथा नहीं जानते थे तो इस से अधिक अन्य हम नहीं जानते और क्या होसकता है ।

किन्तु प्रतिनिधि शासन में राज सभा के लिये सभी प्रकार के पुरुषों को नहीं चुना जा सकता है इसी प्रकार उस समय कुछ पुरुषों को सर्वथा बहिष्कृत किया हुआ था वे चुनाव में नहीं आसकते थे । इसका यह अभिप्राय नहीं हैं कि जो जन्म से ब्राह्मण कुल उत्पन्न होते थे उन को चुना जा सकता था और निचले कुल में उत्पन्न पुरुषों को बहिष्कृत किया हुआ था किन्तु जो किसी भी वर्ण का होता था यदि वह उपर्युक्त गुणों से युक्त होता था तो उसे प्रतिनिधि

---

* Self government in Iudia vedic and past vedic by Paygee (I69 Page).

चुना जासकता था और जो जन्म से निचले कुल में उत्पन्न हो कर भी उपर्युक्त गुणों से युक्त होता था वह प्रतिनिधि चुना जा सकता था। जो चाहे किसी कुल म उत्पन्न हो परन्तु निम्नलिखित दूषणों से युक्त होता था तो वह सर्वथा चुनाव से बहिष्कृत समझा जाता था। जिन पुरुषों को सर्वथा ही नहीं चुना जा सकता था वे निम्नलिखत हैं:—

(१) जो पुरुष कभी किसी कमेटी में रह चुका हो और उस समय उसने अपने वर्ष का ठीक २ हिसाब नहीं दिया हो।

(२) उपर्युक्त पुरुष के जितने भी निकट सम्बन्धी हैं (उन सम्बन्धियों का नाम निर्देश भी इन लेखों में है हमने विस्तार भय से नहीं उद्धृत किया)।

(३) जो पुरुष व्यभिचार के महापातक से पातकी सिद्ध हो चुका हो अथवा जिसने निम्नलिखित पाप किये हों क) ब्रह्महत्या (ख) मद्यपान (ग) गुरुपत्नी से व्यभिचार (घ) तथा इस प्रकार के पापी पुरुष से इन विषयों में जिसका सम्बन्ध रहा हो वह भी चुनाव से वहिष्कृत है।

(४) इस प्रकार उपर्युक्त पाप करने वाले पुरुष के सब सम्बन्धी (यहां भी उन्हीं सम्बन्धियों का निर्देश है जिनका द्वितीय नियम में पहले उल्लेख किया गया है)।

(५) जो जातिच्युत (Out cast) कह कर प्रसिद्ध करदिया गया हो।

(६) जो पुरुष बिना विचारे शीघ्रकारी हो।

(७) जिसने परकीय धन को चोरी अथवा डाके से अपहरण किया हो।

(८) जो अभक्ष्य भोजन खाता हो।

(९) जो अपराधी आघोषित किया गया हो।

(१०) जिसने पहले कभी किसी ग्राम को कष्ट पहुंचाया हो।

(११) जिसने व्यभिचार का अपराध किया हो और व्यभिचारी हो †।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार के दूषणों से दूषित पुरुषों को प्रतिनिधि सभा में प्रविष्ट होने का अधिकार नहीं दिया जाता था।

इस प्रकार इन शिलालेखों से पता लगता है कि दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में चोल देश एक अत्यन्त प्रबल और समृद्धिशाली देश था। वहां के राजा को सम्राट् कह कर पुकारा जाता था तथा चारों दिशाओं में चोल सम्राट का लोहा माना जाता था। इस समृद्धि का एक मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि वहां का शासन

---

† Self government in India vedic and past vedic by Paygee (175 Page) **इस विषय को विस्तार से देखने के लिये देखो।** Epigraphical reports of the government of Madras for 1898-99, has 922923. as also enscriptions 1.2 of 1898; report archeological survey of India 1904.5 and south Indian inscription Vol III. part 1 ukkal).

प्रजातंत्र था और प्रजाओं को अपनी समृद्धि करने का पूर्ण अवसर मिला हुआ था।

मालाबार में प्रजातन्त्र शासनः—भारतवर्ष ने प्रजातंत्र शासन पद्धति को किसी और से नहीं सीखा अपितु स्वयमेव उस का आविष्कार किया है। इसके प्राचीन से प्राचीन समय में भी प्रजातंत्र शासन अपने किसी न किसी रूप में अवश्य पाया जाता है। हमने ऊपर चोल देश का उदाहरण दिया है इसी प्रकार मालाबार देश के इतिहास से भी मालूम होता है कि वहां भी चिरकाल से प्रजातंत्र शासन किसी न किसी अवस्था में रहा है।

वहां प्रत्येक ग्राम में एक ग्राम सभा होती थी जिस को तारा के नाम से पुकारा जाता था। यह ग्राम में लोक सभा का कार्य करती थी। इस सभा की ओर हम विशेष ध्यान नहीं आकर्षित करना चाहते क्योंकि ग्राम समिति भारत के लिये एक अत्यन्त साधारण बात थी। किन्तु इस से ऊपर एक लोक सभा होती थी इसका नाम कोहम था यह एक प्रधान राजकीय सभा थी। लोगों के प्रतिनिधि इस में बैठते थे और राष्ट्र के हितकारी नियमों का निर्धारण करते थे। इस सभा की शक्ति न्यून नहीं थी राजा और मंत्रियों की आवाज से इस सभा की आवाज प्रबल समझी जाती थी यदि राजा की कोई आज्ञा इस सभा की दृष्टि में अनुचित और नियम विरुद्ध होती थी तो उसको कार्य में नहीं लाया जाता था। इसी से इस सभा की

शक्ति का अनुमान किया जा सकता है उन राज मंत्रियों को जो अनुचित कार्य करते थे यह सभा दण्ड दे सकती थी * ।

मालाबार में मुख्यतः नायर लोगों के हाथ में सारी राजकीय शक्ति थी । इस उपरोक्त लोक सभा में वे सभी प्रकार के राष्ट्र के हितकारी प्रश्नों पर वाद विवाद करते थे। किसी राष्ट्र से युद्ध छेड़ना और किसी से शान्ति और सन्धि करना यह इन्ही प्रतिनिधि लोगों के हाथ में था + । इस प्रकार सर्वसाधारण लोगों के हाथ में ही राष्ट्र की बागडोर थी और जिस ओर वे राष्ट्र को ले जाना चाहते थे उसी ओर वे उस बागडोर को घुमा सकते थे । राष्ट्रवासियों को अपनी राष्ट्रीय उन्नति के लिये किसी के पास जाकर प्रार्थना सुनाने भीख मांगने और पांव पर पड़ कर गिड़गिड़ाने की आवश्यकता नहीं थी अपितु वे राष्ट्ररूपी नौका के स्वयमेव कर्णधार थे और जिधर उस को ले जाना उचित और लाभदायक समझते थे लेजा सकते थे ।

---

* Self government ni Indic Vedia and past vedic by Paygee (186 page)इसकी पुष्टि के लिये आपने १८२ पृष्ट पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक प्रतिनिधि का उद्धरण दिया है जो उस समय स्वयं कालीकट में उपस्थित था और जिसने सब कुछ अपनी आंखों से देखा था वह इन नायर लोगों की राजसभा के विषय में जो पंक्तियां लिखता है वे अत्यन्त स्मरणीय हैं वह लिखता है "These Nayars being heads of the Kalicut people, resemble the porliament aud do not obay the king's dictates in all things, but chastise his ministers when they do unwarr antable acts(Feuic herry factiory dirry of18may1746

\+ वही पुस्तक पृष्ट १८७

उन लोगों के लिये जो कहा करते हैं कि "प्राचीन भारत में राजा देवता के समान समझा जाता था वह जो कुछ कह देता था प्रजा को उस के सन्मुख सिर झुकाना पड़ता था वह जो कुछ कहता या करता था प्रजा को उस की समालोचना करने की शक्ति नहीं थी। वेद वाक्य के समान उसको मानना ही पड़ता था" उनके लिये यह मुंहतोड़ उत्तर है जो भारतीय प्रजा राजसभा में बैठकर राजा की अनुचित आज्ञाओं को काट देने का अधिकार रखती थी जो प्रजा राजा के मंत्रियों को अपराध करने पर दण्ड दे सकती थी उस सिंहवत् प्रजा को भेड़ के समान भीरु कहना सर्वथा अनभिज्ञता और अज्ञानता को प्रकट करना है।

इस कारण प्रारम्भ से लेकर १८वीं शताब्दी के अन्त तक इन तारा और कोहम आदि लोक संस्थाओं के कारण मालाबार राष्ट्र ने बड़ी सम्पत्ति और समृद्धि का उपभोग किया है। इन संस्थाओं के कारण जहां वहां के राजाओं को देश पर किसी प्रकार के अत्याचार का अवसर नहीं मिला वहां सर्वसाधारण लोगों को देश की उन्नति करने का पूर्ण अवसर मिल गया। देश की समृद्धि का एक बड़ा प्रमाण यही है कि कालीकट नामक नगर चिरकाल तक पूर्वीय और पश्चिमीय व्यापार का केन्द्र रहा है +।

इस प्रकार भारत वर्ष के भिन्न २ देशों का जितना २ इतिहास पाया जारहा है उस से उतना २ सिद्ध हो रहा है कि भारत में प्रजा तंत्र शासन अपने किसी न किसी स्वरुप में सदा ही रहा है।

+ वही पुस्तक पृष्ठ १८७ तथा (Malabar gozetleer Vol.I. dage, 132.)

इस देश में प्रजातंत्र शासन का भाव इतना समाचुका था कि ऊपर से एक सत्ताक शासन से शासित होने वाले राष्ट्र में भी भीतर वस्तुत: प्रजातंत्र शासन का बहुत सा अंश रहता था। मौर्य चन्द्रगुप्त जैसे बलवान् एकाधिकारी Destpot राजा के राज्य में भी नागरिक शासन पञ्चायतों द्वारा होता था। नगर में भिन्न २ शासन विभाग करने वाली ६ सभायें थी और प्रत्येक सभा में ५ सभासद् होते थे। इन सभाओं द्वारा ही वस्तुत: बहुत शासन कार्य होता था।

पञ्चायत पद्धति:—ग्रामों की शासन पद्धति के विषय में तो निस्संशय हो कर कहा जा सकता है कि वैदिक काल से आरम्भ के १८ शताब्दी के समाप्त होने तक के महान् दीर्घकाल में ग्रामों का शासन पञ्चायत या ग्राम समितियों द्वारा होता रहा है। भारतवर्ष में पञ्चायतों द्वारा शासन का तरीका कब आरम्भ हुआ कोई भी ऐतिहासिक इसका निर्देश नहीं कर सकता। इसका कारण यही है कि भारत के ऐतिहासिक समय के आरम्भ होने से पहले ही पञ्चायत पद्धति आरम्भ हो चुकी थी। जब अभी युरोप और अमरीका में शासन पद्धति का नाम भी उत्पन्न नहीं हुआ था उस समय भारत में सर्वोत्तम प्रजातंत्र शासन पद्धति द्वारा शासन होता था। इसी लिये इतिहास लेखक चिजल्म एन्स्टे के शब्दों में कहा जासकता है कि ' The east is the parent of Mnnicipalities " अर्थात् प्रजातंत्र शासन भारतवर्ष से ही सारे देशों ने सीखा है।

ग्राम समितियों और पञ्चायतों के हाथ में क्या शक्ति और अधिकार थ इस का भी निर्देश करना हम आवश्यक समझते हैं। आज कल गवर्नन्मेट भारत सरकार आफ इन्डिया भी पञ्चायत पद्धति

को फिर प्रचलित करने की कुछ २ आशा दिला रही है। अतः इन पञ्चायतों को देख कर हमें भ्रम हो सकता है कि प्राचीन काल में भी इसी प्रकार की पञ्चायतें होती होंगी परन्तु ऐसा समझना नितान्त असत्य है। प्राचीन काल की पञ्चायतों और इन भावी पञ्चायतों में आकाश पाताल का भेद है जो अधिकार और शक्ति उस समय पञ्चायतों को थी उसका सहस्रवां भाग भी इस समय पञ्चायतों को नहीं प्राप्त होगा। उस समय ग्राम समितियों के कारण प्रत्येक ग्राम एक छोटा राष्ट्र था। अन्तरीय प्रबन्ध के लिये ग्राम समिति को पूर्ण स्वतन्त्रता थी कोई भी शक्ति उन के अन्तरीय प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। १८ शताब्दी तक की भी ग्राम समितियों में यह शक्तियां और अधिकार प्राप्त थे ग्राम समितियों को यह अधिकार प्राप्त थे या नहीं इस के निश्चय के लिये चार्लसमेट काफ से अधिक प्रामाणिक और कोई नहीं हो सकता अतः उन के शब्दों को ही प्रस्तुत करना हम उचित समझते हैं वे कहते हैं "The village communities are little repupublics having nearly every thing they can want wethin themselves, and almost independent of any foreign relations. **एक स्थान पर वे कहते हैं कि** "This union of village communintes, each one forms a little State in itstelf"

भारत का इतिहास लेखक विन्सेन्ट स्मिथ भी कहता है कि राजा के निरीक्षण के नीचे रहते हुए भी ग्राम समितियों को न्याय तथा शासन प्रबन्ध में बहुत अधिकार प्राप्त थे ÷ इतने से ही पाठकों

÷ Early histoy of India 414 page 1908. Edition

को उस समय की पंचायतों और ग्राम समितियों की शक्ति का अनुमान हो सकता है।

ऊपर हमने वैदिक काल से लेकर १८ शताब्दी के अन्त तक सरसरी नज़र से देखा है कि भारत में भिन्न २ समय पर अनेक प्रकार की भिन्न २ लोक सभाओं द्वारा प्रजातंत्र शासन होता रहा है * । ग्रीक, सीथियन, पार्थियन, अफगान और मुग़ल लोगों ने क्रम से भारत पर आक्रमण किये और यहां की राजनैतिक संस्थाओं के ध्वंस करने का पूर्ण यत्न किया और बहुत अंश में वे सफल भी हुए तो भी प्रजातंत्र शासन का कुछ न कुछ चिन्ह भारत के अन्दर सदा ही वर्तमान रहा। अन्य सब संस्थायें चाहे नष्ट हो गईं परन्तु यह बात निर्विवाद है कि ग्राम समितियों अथवा पंचायतों का नाश वे भी नहीं कर सके। अनेक राज्य परिवर्तनरूपी आन्धियों के आने पर भी भारत की ग्राम समितियों की दृढ़ दीवारें नहीं हिलीं थीं इस बात की पुष्टि के लिये चार्लसमेटकाफ ही प्रमाणिक है उसका एक २ शब्द सच्चा है इस लिये वे ही हम उद्धृत करते हैं:—They (Village communities) seem to last where nothing else lasts. Dynasty after dynasty trumbles down, revolution suceed to revolution. Hindu, Pathan, Mogal, moharatta,

---

* gournal of Royal asiatie Soceety Vol III (old Serise poge 355 में भारत में वर्तमान १८ प्रकार की समितियों का वर्णन किया है। और कहा है कि प्रत्येक में कम से कम तीन सभासद् होते थे। एक सार्वजनिक समिति भी होती थी जिस के सभासदों की संख्या निश्चित नहीं थी कहीं २ इन सार्वजनिक सभाओं में सभी युवक और वृद्ध बुलाये जाते थे।

Sikh English are all masters in turn but the village commemity remains the Same. भारत के इतिहास में आरम्भ से लेकर अन्त तक अनेक फेर फार हुए अनेक परिवर्तन हुए परन्तु ग्राम समितियों की पद्धति वैसी की वैसी वर्तमान रही । यदि भारत की राज्यलक्ष्मी जो कल पठान राजाओं के महलों में विहार कर रही थी आज उन को छोड़ कर मुगल राजाओं के महलों को सुशोभित करने लगती है, यदि दिल्ली की राजधानी पर से मुगल बादशाहों की पुरानी पताका जो कल फहरा रही थी आज उखाड़ कर मिट्टी में फैंक दी जाती है और उसके स्थान पर मराठा हिन्दुओं की नवीन पताका गाड़ दी जाती है और यदि आज भारत की राजधानी जो दिल्ली में थी देवगिरी ले जाई जाती है या देवगिरी से फिर दिल्ली लाई जाती है तो इस से यह समझना भारी भूल है कि भारत का सारा राज्य प्रबन्ध अस्त व्यस्त हो जाता था । वास्तव में नगरों और ग्रामों के अन्तरीय राज प्रबन्ध में इस से जरा भी फेर फार नहीं होता था स्थानीय पंचायतें और ग्राम समितियों पूर्ववत् ही वर्त्तमान रहती थीं ।

अनेक परिवर्तनों के होते हुए भी इन ग्राम समितियों की स्थिरता के कारण ही प्राचीन सभ्यता और प्राचीन पद्धतियां भी साथ २ निरन्तर स्थिर रह सकीं थीं और भारतीय जीवन की रक्षा हो सकी थी। इस को चार्लसमेटकाफ भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हुए लिखते हैं "This union of village communities .... has I conceive contributed more than any other cause to the preservations of the people of India though all the

revolutions and charges which they have suffered and it is in a high degree conductive to their happiness and to the enjoyment of a great portion of freedom and indepndenec' मुगलों और अफगानों के पराधीन होने पर भी ग्राम समितियों और पंचायतों के होने के कारण लोगों को उस कठोर पराधीनता का अनुभव नहीं होता था वे नगरों और ग्रामों में अपने को स्वाधीन और स्वतन्त्र ही समझते थे।

परन्तु शोक है १८ शताब्दी के अन्त के साथ ही ऐसी पुरानी और उपयोगी संस्थाओं का भी दुखदायक अन्त हो गया। इंग्लिश गवर्नमेन्ट ने उस समय उनकी कीमत को नहीं समझा। भारत का इतिहास लेखक विन्सेन्ट स्मिथ भी इन संस्थाओं की मृत्यु पर एक आंसू अवश्य बहाता है और कहता है "It is a pity that this apparenlly excellent system of local self government really popnlar in origin should have died out ages ago. Modern Government would be happier if they could command equally effective agency +" ये संस्थायें भारत की समृद्धि का कारण थीं इस लिये उनके नष्ट होने पर भारत की समृद्धि का नाश हुआ और तब से यहां पर अकाल और महामारी का पदार्पण हुआ। इस लिये भारत की समृद्धि का एक मात्र उपाय यही है कि उन लोक संस्थाओं का भारत की पवित्र भूमि पर पुनरुज्जीवन किया जाय।

+ Early history of India second edetion, 311, 312 Page.

पञ्चम अध्यायः

राज्ञा प्रतिष्ठितो धर्मः धर्मात्स्वर्गः प्रतिष्ठितः ॥ महा. आदि.४१
धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति ॥

आज संसार में एक सत्ताधारी राजा बड़ा भयंकर समझा जाता है, और उसका नाम बड़ी घृणा से लिया जाता है परन्तु प्रथम अध्याय में जो हमनें प्राचीन भारत के एक सत्ताधारी राजा का चित्र खींचा है वह भयानक नहीं है प्रत्युत सुन्दर और चित्ताकर्षक है । और साथ ही इतिहास भी बतलाता है कि युरोप में एक सत्ताधारी राजाओं ने जो अत्याचार प्रजाओं पर किये हैं भारत में ऐसे राजाओं ने उस का सहस्रांश भी कहीं अत्याचार नहीं किया । यह भेद निष्कारण ही नहीं है । पूर्व वर्णित अन्य अनेक प्रतिबन्धों के अतिरिक्त भारतीय राजा पर एक पवित्र बन्धन सदा रहा है जिस को युरोप के राजाओं ने कभी अनुभव नहीं किया । उस बन्धन को धार्मिक बन्धन का नाम दे सकते हैं ।

युरोप के राष्ट्रों के समान भारत में राष्ट्र केवल मात्र विशुद्ध राजनैतिक संस्था ही नहीं रही परन्तु उस के साथ २ भारत में राष्ट्र को धार्मिक संस्था के नाम से पुकारा गया है । वहां धर्म राष्ट्र के लिये है न कि राष्ट्र धर्म के लिये परन्तु भारत में माना जाता है राष्ट्र धर्म के लिये है न कि धर्म राष्ट्र के लिये । युरोप के राष्ट्रों का प्राचीन काल और मध्यकाल का इतिहास जानने वाले जानते हैं कि यह

विचार वहां प्रारम्भ से ही रहा है परन्तु वर्तमान काल का इतिहास जानने वाले भी यही कहते हैं कि अब भी युरोप में यही सिद्धान्त माना जाता है कि राष्ट्र धर्म के लिये नहीं किन्तु धर्म राष्ट्र के लिये है। धर्म की बात वहीं तक मानी जाती है जहां तक वह राष्ट्र के अनुकूल हो जहां वह राष्ट्र की इच्छा के कुछ भी विपरीत होती है वहां उसका तिरस्कार कर दिया जाता है। आज धर्म राष्ट्र के सन्मुख गोडा टेक कर जी हजूर करने का काम करता है। राष्ट्र के तेजस्वी रूप के सामने धर्म अत्यन्त निर्बल और म्लान हो गया है यही कारण है कि जब अपने राष्ट्र को स्वार्थों से प्रेरित हुए २ राजनैतिक यमदूतों के मुख से मारो मारो की भयानक आवाज़ निकली तो धर्म के वे दूत जो रात दिन चिल्ला चिल्ला कर कहा करते थे कि "भाई किसी को मत मारो यदि कोई तुम्हारी एक गाल पर थप्पड़ मारता है तो तुम दूसरी गाल भी सामने कर दो" एक दम अपने लम्बे चोलों को फैंक कर खाकी कपड़े पहन बाहर निकल पड़े और अपने उन्हीं हाथों से जिस से सैंकड़ों को जल से बपतिस्मा दिया करते थे इस समय बन्दूक और तोपों की जलती हुई आग से बपतिस्मा देने लगे। कारण यही है कि आज युरोप में माना जाता है कि राष्ट्र रूपी तेजस्वी सम्राट् के सन्मुख धर्म रूपी भिक्षुक रास्ता रोक कर खड़ा नहीं हो सकता किन्तु धर्म के मार्ग को रोक कर राष्ट्र जब चाहे खड़ा हो सकता है। परन्तु भारत में इस से सर्वथा विपरीत ही दृश्य था जब धर्म राष्ट्र का रास्ता रोक कर "बस खड़े रहो" की आज्ञा देता था राष्ट्र उसी समय गर्दन झुकाकर खड़ा हो जाता था तभी तो कहा है:— **"अनीकयोः संहतयोर्यदीयाद् ब्राह्मणोऽन्तरा शान्तिमिच्छन्नुभयतो न योद्धव्यं तदा भवेत्"** जब दो सेनायें लड़ रही होती थीं

और एक वेदविद् विद्वान् ब्राह्मण बीच में आकर खड़ा हो जाता था और अपनी ब्रह्मतेजो मयी ध्वनि से हाथ उठा कर कहता था कि बस लड़ना बन्द कर दो तो उसी समय आज्ञा पाते ही दोनों सेनायें पीछे हट जातीं थीं और खून की प्यासी तलवारें भी एक क्षण में म्यानों में प्रविष्ट हो जाती थीं। यह इस बात का चिन्ह है कि धर्म की आज्ञा बड़ी बलवती थी राष्ट्र उसका तिरस्कार नहीं कर सकता था।

पाठक ! क्षण भर सोचिये उस दृश्य को, जब महाराज दशरथ राजसिंहासन पर बैठे हुए हैं महर्षि विश्वामित्र उस से उनके प्रियपुत्रों को अपने तपोवन की रक्षा के लिये मांग रहे हैं। मेरे सुकुमार नवयुवक बालक और समर दुर्दम भयानक राक्षस, उनसे लड़ने के लिये मेरे प्यारे बच्चों को ऋषि मांग रहे हैं यह कह दशरथ अपने मन में अपने पुत्रों को उस के हाथ में देने से सर्वथा इन्कार कर देते हैं। परंतु राजा को टालमटोल करता हुआ देख कर ऋषि क्रुद्ध हो जाते हैं उन के मुख पर रोष के चिन्ह पाकर महाराज डर जाते हैं। अहो सहस्रों राजाओं के विजेता एक तपस्वी ब्राह्मण से भयभीत हो कर कांपने लगते हैं। पाठक वर्ग ! यह एक का ऋषि के सन्मुख कांपना नहीं था परंतु राष्ट्र का धर्म के सन्मुख कांपना था। इसी प्रकार राजा हरिश्चन्द्र एक ऋषि के भय और अपनी प्रतिज्ञा भंग के भय से यदि मारे मारे फिरते रहे तो यह केवल एक राजा का एक तपस्वी से डरना मात्र ही नहीं था परन्तु राष्ट्र का धर्म के भय से मारा मारा फिरना था। इस बात की सिद्धि के लिये घटनाओं को उंगली पर गिनने की आवश्यकता नहीं हैं भारत के इतिहास की थैली ही इस प्रकार के अमूल्य रत्नों से भरी पड़ी है।

प्राचीन भारत में राष्ट्र का और राष्ट्र के मुखिया राजा का महत्व इसी लिये था कि वह धर्म का रक्षक है । उसको धर्म का चौकीदार मानना उस के लिये बड़े गौरव की बात थी। परन्तु आज क्या सर्वथा इस से विपरीत नहीं है क्या आज धर्म राष्ट्र का चौकीदार नहीं है ? यदि किसी युरोपियन राष्ट्र ने एशिया या अफ्रिका के किसी देश में पादप्रसार करना होता है तो पहले वहां मैदान सफा करने के लिये धर्म के दूत भेजे जाते हैं वे उन देशों में जाकर उन लोगों की असभ्यता, अविद्या और जंगलीपन रुपी मल को हटाने के लिये क्रिश्चियैनिटी (ईसाई धर्म) का झाडू फेरते हैं अपने राष्ट्र के वहां आने के लिये मार्ग सफा करते हैं । जहां जहां युरोपियन राष्ट्रों ने पांव रखा है पहले वहां मिशनरी लोगों को भेजा गया है और उन लोगों द्वारा मार्ग सफा होने पर उन राष्ट्रों ने शनैः २ वहां अपना अधिकार जमाया है । इसी लिये जापान के एक राजनैतिक पुरुष ने अभी घोषणा की थी कि यदि हमारा राष्ट्र चाहता है कि वह बाहर अन्य देशों में अपना पग पसारे तो आवश्यक है कि पहले वहां मैदान सफा किया जाय इस लिये उसका प्रस्ताव था कि जापान के राष्ट्र को अपने धर्म के मिशनरी (प्रचारक) शीघ्र ही ऐसे स्थानों पर भेजने चाहिये । अतः स्पष्ट है कि शुद्ध हृदय से धर्म प्रचारकों को नहीं भेजा जाता किन्तु राष्ट्र के मार्ग को कण्टक रहित करने के लिये धर्म के चोले की ओट में सफरमैना की पलटन को भेजा जाता है । इसी लिये हमने कहा है कि आज धर्म राष्ट्र का (सेवक) जी हजूर करने वाला चपरासी है ।

आज राष्ट्र धर्म से कहता है " हे धर्म तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है मैं तुम्हारी बातों में कोई हस्तक्षेप नहीं करूंगा परंतु इतनी शर्त है

कि तुम भी मेरे कामों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना, यदि तुम्हारा सिद्धान्त है कि भोग विलास में बह जाना हानिकारी है तो जाओ जो सामाजिक व्यक्ति भोग विलास में बह रहे हैं उन को जाकर बचाओ, यदि तुम अपने स्वार्थ के लिये दूसरे को सताना दूसरे का खून बहाना पाप समझते हो तो जो स्वार्थी दूसरों का गला घोंट रहे हैं और खून बहारहे हैं उन के हाथों को इस पाप से रोको, यदि असत्य व्यवहार करना दूसरों को बहका कर वञ्चना करना, दूसरों की चिताओं पर उत्सव मनाना तुम्हें घोर नृशंसता प्रतीत होती है तो जो यह क्रूरता कर रहे हैं उनको डराओ और इस पाप से बचाओ, परंतु याद रखना मेरे भोग विलासों की, मेरे अत्याचारों की, और मेरे वञ्चना पूर्ण असत्य व्यवहारों की समालोचना भूलकर स्वप्न में भी कभी मत करना, व्यक्तिओं की समालोचना करने का व्यक्तिओं को समझाने का तुम्हारा पूर्ण अधिकार है परंतु राष्ट्र की समालोचना और उसको समझाने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है क्योंकि अब आचार शास्त्र बदल-चुका है भोग विलास की सामग्री के एकत्र करने में व्यग्र रहना, अत्याचार करना, खून बहाना, और असत्य व्यवहार करना आदि व्यक्तिओं के लिये दूषण हैं पर राष्ट्र के लिये यही भूषण हैं। बस जाओ इस शर्त के साथ तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है" पाठक वर्ग! इस लिये हम देखते हैं कि यदि किसी राष्ट्र को अर्थ, काम, और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है तो अच्छे या बुरे किसी भी उपाय से उसकी प्राप्ति की जाती है। धर्म का यह साहस नहीं होता कि वह राष्ट्र को इस से रोक सके।

इस लिये आज जब राष्ट्र अपने व्यापार और राज्य विस्तार के मद से मत्त हो जाते हैं तो धर्म को पांव तले कुचलने में तनिक भी नहीं हिचकते किन्तु क्षणभर भारत के प्राचीन राजनैतिक सिद्धान्तों पर दृष्टि पात कीजिये । व्यास कहते हैं कि

अर्थशास्त्र परो राजा धर्मार्थान्नाधिगच्छति ।
अस्थाने चास्य तद्वित्तं सर्वमेव विनश्यति । *

जो राजा अर्थशास्त्र को लक्ष्य में रख कर केवल अर्थोपार्जन में ही लगा रहता है वह धर्मानुकूल अर्थ का उपार्जन नहीं करता और उसका यह सारा धन अन्त में अवश्य ही नष्ट हो जाता है । हमारी राजनीति में अर्थशास्त्र को बड़ा स्थान दिया गया है परन्तु तो भी उसका आसन धर्मशास्त्र से नीचे ही है । याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में लिखते हैं ।

अर्थशास्त्रा द्बिलवद्धर्मशास्त्रमिति स्मृतिः ॥ +

राजनीति में जहां अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र परस्पर टक्कर खाते हों वहां अर्थशास्त्र को हट जाना चाहिये और धर्मशास्त्र को मार्ग मिलना चाहिये । यहा पर धर्मशास्त्र को अर्थशास्त्र से सदा बलवान् समझा गया है । जहां तक अर्थशास्त्र की आज्ञा धर्मशास्त्र की

* ७१ । १४ शांति० ॥

\+ यास्क स्मृति । २१

आज्ञाओं के विरुद्ध नहीं है वहां तक वह मानी जाती है जहां वह धर्म शास्त्र की आज्ञा को काटती है वहां उसका सर्वथा तिरस्कार कर दिया जाता है। महर्षि व्यास कहते हैं कि कोष इस लिये एकत्रित किया जाता है कि उन से प्रजाओं में धर्म की वृद्धि की जाय और प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण किया जाय इस लिये आवश्यक है कि जो कोष इस प्रयोजन के लिये एकत्रित किया जाता है वह धर्मानुकूल हो एकत्रित किया जाय ✣। अर्थात् राजा धन को धर्म की और काम (ऐश्वर्य) की वृद्धि के लिए एकत्रित करता है तो यदि वही धन अधर्म से एकत्रित किया जाय तो इस से बढ़कर मूर्खता क्या हो सकती है। इस प्रकार हमारे राजनैतिक साहित्य में राष्ट्र को अपने स्वार्थों से प्रेरित हो कर धर्म की आज्ञा के विरुद्ध चलने से बार बार सावधान किया गया है।

आज यदि किसी राष्ट्र के नेताओं से उन के राष्ट्र की उन्नति की साक्षियां पूछी जाती हैं तो वे अपने कुछ महकमों की आय व्यय आदि की सूचियां खोल २ कर सिद्ध करते हैं कि उनका व्यापार बढ़ रहा है निर्यात पदार्थों की संख्या बढ़ रही है, नये २ आविष्कार और उन को काम में लाने के तरीके दिन रात निकल रहे हैं, राष्ट्र का कोष दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है लड़ाकू जहाज़ और लड़ाई का नये से नया सामान रात दिन बढ़ाया जा रहा है इत्यादि २ अनेक प्रकार की सूचियां प्रस्तुत की जाती हैं।

✣ कोषेण धर्मश्च कामश्च परलोकस्तथा ह्ययम्।
तं च धर्मेण लिप्सेत नाधर्मेण कदाचन॥
शान्ति। १३०। ५०

परन्तु सोचना यह है कि यदि किसी प्राचीन भारत के राष्ट्र के नेता से पूछा जाय कि उसका राष्ट्र उन्नति कर रहा है या नहीं तो उसका उत्तर क्या होगा। एक ऋषि बाहर से केकय देश में पंहुचते हैं और केकय देश के राजा अश्वपति के पास पहुंच कर प्रश्न करते हैं कि हे राजन् तुम्हारा राष्ट्र उन्नति तो कर रहा है! उस समय अश्वपति महाराज उत्तर देते हैं हां मेरा देश अत्यन्त उन्नत और समृद्ध है क्योंकि:—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्नि:
नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

हे ऋषे मेरे राष्ट्र में कोई चोर नहीं कोई क्रूर नहीं, ऐसा कोई पुरुष नहीं जो अग्निहोत्र न करता हो, कोई व्यभिचारी नहीं और जब व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री तो हो ही नहीं सकती है। यह सुनकर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न होते और मनही मन राजा के प्रबन्ध की और प्रशंसा करते हैं। पाठक वर्ग! उस समय रेल तार टेलिफोन और नहरों की उन्नति से ही केवल राष्ट्र की उन्नति का परिमाण नहीं लगाया जाता था। व्यापार, निर्यात पदार्थों के बढ़ जाने और कोश में कुछ चान्दी और सोने के ढेरों के बढ़ जाने मात्र से ही देश को उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ नहीं मान लिया जाता था। परन्तु समाज के व्यक्तियों की उन्नति से राष्ट्र को उन्नत समझा जाता था। यदि कोई महल ऊपर से अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता था परन्तु उसकी नींव अत्यन्त कच्ची हो रही होती थी तो उसको सुन्दर नहीं समझा जाता था। यदि कोई वृक्ष ऊपर फूल फलों से भरा होता था परन्तु उसकी जड़ें खोखली हो रही होतीं थीं तो उसको प्रशंसा योग्य नहीं समझा जाता था, यदि कोई पुरुष ऊपर वस्त्रों और आभूषणों से

सज्जित होता था परन्तु अन्दर उसकी आत्मा मर चुकी होती थी तो उसको जीवित नहीं समझा जाता था । इसी प्रकार वे इतने मूर्ख नहीं थे कि किसी राष्ट्र के बढ़ते हुए व्यापार और धन धान्य को देखकर मुग्ध हो जाते और एकदम कह उठते कि यह देश बड़ा उत्तम है परन्तु वे इन बाह्य बातों को गौण समझ कर अन्तरीय दृष्टि से यह देखते थे कि क्या राष्ट्र रूपी प्रासाद जो ऊपर से इतना भव्य प्रतीत होता है वास्तव में अन्दर से भी इतना भव्य है कि नहीं। उनकी दृष्टि ऊपर के चोले को पार कर अन्तर्गत आत्मा तक पहुंचती थी और अन्तरीय उन्नति को वे उन्नति की मुख्य कसौटी समझते थे ।

उनका विश्वास था कि राष्ट्र में यदि धर्म की वृद्धि हो रही है तब तो राष्ट्र अवश्य उन्नति कर रहा है यदि धर्म का ह्रास हो रहा है तो राष्ट्र अवश्य नाश को प्राप्त हो रहा है परन्तु प्रश्न हो सकता है कि धर्म की वृद्धि से राजा का क्या सम्बन्ध है इस पर हमारे प्राचीन राजनीतिज्ञों का उत्तर है कि यदि राजा ही चाहे तो वह राष्ट्र को धार्मिक बना सकता है और राजा ही चाहे तो वह सारे राष्ट्र को घोर अधार्मिक भी बना सकता है इस लिये वे कहते थे कः—

धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति सब भूतमात्र की स्थिति का कारण धर्म है परन्तु उस धर्म की स्थिति का कारण राजा है ।

जब राजा धर्म की स्थिति का कारण समझा जाता था तब इसका आवश्यक परिणाम होना था कि राजा केवल देश की आर्थिक और सैनिक उन्नति करने में ही नहीं लगा रहता था परन्तु धार्मिक उन्नति

करने की ओर भी अपना पूर्ण ध्यान देता था। और आज कल के राष्ट्रों के समान वह धार्मिक संशोधन में बिलकुल उदासीन नहीं रहता था इस लिये उन दिनों राजनीतिज्ञ लोग राजा को जोरदार शब्दों में आज्ञा देते हुए कहते थे।

> पानागारनिवेशाश्च, वैश्याः प्रापणिका स्तथा।
> कुशीलवाः सकितवाः ये चान्ये केचिदीदृशाः॥
> निग्रह्याः सर्व एवैते ये राष्ट्रस्योपघातकाः।
> एते राष्ट्रेऽभितिष्ठन्तो बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः
> ८८। १८। शान्ति०॥

हे राजन्! मद्यशालायें, वेश्यायें, घृणित व्यापार करने वाले, नाचने गाने वाले बदमाश लोग, जुआ खेलने वाले इत्यादि २ दुराचारी राष्ट्र के घातक हैं राजा को उचित है वह इन को राष्ट्र में नहीं होने दे यदि ये राष्ट्र में रहते हैं तो सारी अच्छी प्रजायें इनके कारण दुखित रहती हैं।" पाठकवर्ग! इसी कारण आज के उन्नत राष्ट्रों और उन दिनों के उन्नत राष्ट्रों के वर्णन में इतना भारी भेद है। आज जो राष्ट्र सब से अधिक उन्नत हैं और उन में भी जो नगर सभ्यता के केन्द्र होने का अभिमान रखते हैं यदि देखा जाय तो सब से अधिक मद्यशालायें, सब से अधिक वेश्यायें, सब से अधिक बदमाश लोग और सब से अधिक जुआरी लोग शायद वहीं पर पाये जायंगे। असभ्य और अवनत कहाने वाले राष्ट्रों और नगरों में शायद ही किसी राष्ट्र में इतनी मद्यशालायें और वेश्या शालायें पाई जांयगी जितनी आधुनिक उन्नति की केन्द्र कहाने वाली राजधानियों में पाई जांयगी। बाह्य आर्थिक और राजनैतिक विषयों में आज राष्ट्र मस्त है परन्तु देश

की वास्तविक उन्नति के प्रधान कारण धार्मिक विषयों के लिये वह सर्वथा उदासीन है।

आज कल के राष्ट्रों के शासक विभाग की ओर जब हम दृष्टि-पात करते हैं तो यह पाते हैं कि सभी राष्ट्रों में चाहे वे पूर्ण प्रजासत्ता रखते हों सभी स्थानों पर शासक मण्डल में जो पदाधिश नियत किये जाते हैं उनकी नियुक्ति में लौकिक दृष्टि को ही प्रधानता दी जाती है। धनवान् और लौकिक ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुषों के लिये आज ऊंचे से ऊंचा पद खुला है परन्तु जिन्होंने लक्ष्मी को लात मार कर धर्म और विद्वत्ता को विशेष उपार्जन किया है उन के लिये इन राजकीय पदों के सब द्वार बन्द हैं। राजकीय उच्चपदों के प्राप्त करने के लिये धनी और सम्पत्ति शाली होना यही प्रधान शर्तें हैं धार्मिक या विद्वान् होना कोई शर्त नहीं यदि और स्पष्ट तौर से कहा जाय तो इस में भी कोई अत्युक्ति न होगी कि जो धार्मिक हैं, जो उदार हैं और जो मनुष्य मात्र को प्रेम की दृष्टि से देखने वाले हैं यत्न किया जाता है कि ऐसे पुरुष शासक पदों पर न आसकें। आज कल के अनेक सभ्य राष्ट्र इस प्रकार धार्मिक पुरुषों को अपनी सत्ता के लिये भयानक समझते हैं और यत्न करते हैं कि इन पदों पर वे ही पुरुष रक्खे जांय जो वञ्चना कुशल हों, स्वार्थ सिद्धि करने के सब मार्ग जानते हों और दूसरे के धनों और अधिकारों को लूट लेने में सिद्ध हस्त हों और एक शब्द में कहा जाय तो जो धूर्तता के पण्डित हों। सच मुच यही वंचक प्रवर और स्वार्थ साधक लोग आज कल युरोप में खून की नदी बहाने, हजारों विधवाओं का आर्तनाद कराने और शान्ति सम्पन्न देशों में भी छीना झपटी कराने के मुख्य कारण हैं।

प्राचीन भारत में राष्ट्र का और राष्ट्र के मुखिया राजा का महत्व इसी लिये था कि वह धर्म का रक्षक है । उसको धर्म का चौकीदार मानना उस के लिये बड़े गौरव की बात थी। परन्तु आज क्या सर्वथा इस से विपरीत नहीं है क्या आज धर्म राष्ट्र का चौकीदार नहीं है ? यदि किसी युरोपियन राष्ट्र ने एशिया या आफ्रिका के किसी देश में पादप्रसार करना होता है तो पहले वहां मैदान सफा करने के लिये धर्म के दूत भेजे जाते हैं वे उन देशों में जाकर उन लोगों की असभ्यता, अविद्या और जंगलीपन रुपी मल को हटाने के लिये क्रिश्चियैनिटी (ईसाई धर्म) का झाड़ू फेरते हैं अपने राष्ट्र के वहां आने के लिये मार्ग सफा करते हैं । जहां जहां युरोपियन राष्ट्रों ने पांव रखा है पहले वहां मिशनरी लोगों को भेजा गया है और उन लोगों द्वारा मार्ग सफा होने पर उन राष्ट्रों ने शनैः २ वहां अपना अधिकार जमाया है । इसी लिये जापान के एक राजनैतिक पुरुष ने अभी घोषणा की थी कि यदि हमारा राष्ट्र चाहता है कि वह बाहर अन्य देशों में अपना पग पसारे तो आवश्यक है कि पहले वहां मैदान सफा किया जाय इस लिये उसका प्रस्ताव था कि जापान के राष्ट्र को अपने धर्म के मिशनरी (प्रचारक) शीघ्र ही ऐसे स्थानों पर भेजने चाहिये । अतः स्पष्ट है कि शुद्ध हृदय से धर्म प्रचारकों को नहीं भेजा जाता किन्तु राष्ट्र के मार्ग को कण्टक रहित करने के लिये धर्म के चोले की ओट में सफरमैना की पलटन को भेजा जाता है । इसी लिये हमने कहा है कि आज धर्म राष्ट्र का (सेवक) जी हजूर करने वाला चपरासी है ।

आज राष्ट्र धर्म से कहता है " हे धर्म तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है मैं तुम्हारी बातों में कोई हस्तक्षेप नहीं करूंगा परंतु इतनी शर्त है

कि तुम भी मेरे कामों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना, यदि तुम्हारा सिद्धान्त है कि भोग विलास में बह जाना हानिकारी है तो जाओ जो सामाजिक व्यक्ति भोग विलास में बह रहे हैं उन को जाकर बचाओ, यदि तुम अपने स्वार्थ के लिये दूसरे को सताना दूसरे का खून बहाना पाप समझते हो तो जो स्वार्थी दूसरों का गला घोंट रहे हैं और खून बहा रहे हैं उन के हाथों को इस पाप से रोको, यदि असत्य व्यवहार करना दूसरों को बहका कर वञ्चना करना, दूसरों की चिताओं पर उत्सव मनाना तुम्हें घोर नृशंसता प्रतीत होती है तो जो यह क्रूरता कर रहे हैं उनको डराओ और इस पाप से बचाओ, परंतु याद रखना मेरे भोग विलासों की, मेरे अत्याचारों की, और मेरे वञ्चना पूर्ण असत्य व्यवहारों की समालोचना भूलकर स्वप्न में भी कभी मत करना, व्यक्तिओं की समालोचना करने का व्यक्तिओं को समझाने का तुम्हारा पूर्ण अधिकार है परंतु राष्ट्र की समालोचना और उसको समझाने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है क्योंकि अब आचार शास्त्र बदल चुका है भोग विलास की सामग्री के एकत्र करने में व्यग्र रहना, अत्याचार करना, खून बहाना, और असत्य व्यवहार करना आदि व्यक्तिओं के लिये दूषण हैं पर राष्ट्र के लिये यही भूषण हैं। बस जाओ इस शर्त के साथ तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है" पाठक वर्ग! इस लिये हम देखते हैं कि यदि किसी राष्ट्र को अर्थ, काम, और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है तो अच्छे या बुरे किसी भी उपाय से उसकी प्राप्ति की जाती है। धर्म का यह साहस नहीं होता कि वह राष्ट्र को इस से रोक सके।

इस लिये आज जब राष्ट्र अपने व्यापार और राज्य विस्तार के मद से मत्त हो जाते हैं तो धर्म को पांव तले कुचलने में तनिक भी नहीं हिचकते किन्तु घगभर भारत के प्राचीन राजनैतिक सिद्धान्तों पर दृष्टि पात कीजिये। व्यास कहते हैं कि

अर्थशास्त्र परो राजा धर्मार्थान्नाधिगच्छति।
अस्थाने चास्य तद्वित्तं सर्वमेव विनश्यति । *

जो राजा अर्थशास्त्र को लक्ष्य में रख कर केवल अर्थोपार्जन में ही लगा रहता है वह धर्मानुकूल अर्थ का उपार्जन नहीं करता और उसका यह सारा धन अन्त में अवश्य ही नष्ट हो जाता है। हमारी राजनीति में अर्थशास्त्र को बड़ा स्थान दिया गया है परन्तु तो भी उसका आसन धर्मशास्त्र से नीचे ही है। याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में लिखते हैं।

अर्थशास्त्रा द्विबलवद्धर्मशास्त्रमिति स्मृतिः ॥+

राजनीति में जहां अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र परस्पर टक्कर खाते हों वहां अर्थशास्त्र को हट जाना चाहिये और धर्मशास्त्र को मार्ग मिलना चाहिये। यहा पर धर्मशास्त्र को अर्थशास्त्र से सदा बलवान् समझा गया है। जहां तक अर्थशास्त्र की आज्ञा धर्मशास्त्र की

---

* ७१। १४ शांति०॥

\+ याज्ञ० स्मृति। २१

आज्ञाओं के विरुद्ध नहीं है वहां तक वह मानी जाती है जहां वह धर्म शास्त्र की आज्ञा को काटती है वहां उसका सर्वथा तिरस्कार कर दिया जाता है। महर्षि व्यास कहते हैं कि कोष इस लिये एकत्रित किया जाता है कि उस से प्रजाओं में धर्म की वृद्धि की जाय और प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण किया जाय इस लिये आवश्यक है कि जो कोष इस प्रयोजन के लिये एकत्रित किया जाता है वह धर्मानुकूल हो एकत्रित किया जाय +। अर्थात राजा धन को धर्म की और काम (ऐश्वर्य) की वृद्धि के लिए एकत्रित करता है तो यदि वही धन अधर्म से एकत्रित किया जाय तो इस से बढ़कर मूर्खता क्या हो सकती है। इस प्रकार हमारे राजनैतिक साहित्य में राष्ट्र को अपने स्वार्थों से प्रेरित हो कर धर्म की आज्ञा के विरुद्ध चलने से बार बार सावधान किया गया है।

आज यदि किसी राष्ट्र के नेताओं से उन के राष्ट्र की उन्नति की साक्षियां पूछी जाती हैं तो वे अपने कुछ गतवर्षों की आय व्यय आदि की सूचियां खोल २ कर सिद्ध करते हैं कि उनका व्यापार बढ़ रहा है निर्यात पदार्थों की संख्या बढ़ रही है, नये २ आविष्कार और उन को काम में लाने के तरीके दिन रात निकल रहे हैं, राष्ट्र का कोष दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है लड़ाकू जहाज़ और लड़ाई का नये से नया सामान रात दिन बढ़ाया जा रहा है इत्यादि २ अनेक प्रकार की सूचियां प्रस्तुत की जाती हैं।

+ कोषेण धर्मश्चः कामश्चः परलोकस्तथा ह्ययम्।
तच्च धर्मेण लिप्सेत नाधर्मेण कदाचन॥
शान्ति। १३० । ५०

परन्तु सोचना यह है कि यदि किसी प्राचीन भारत के राष्ट्र के नेता से पूछा जाय कि उसका राष्ट्र उन्नति कर रहा है या नहीं तो उसका उत्तर क्या होगा। एक ऋषि बाहर से केकय देश में पंहुचते हैं और केकय देश के राजा अश्वपति के पास पहुंच कर प्रश्न करते हैं कि हे राजन् तुम्हारा राष्ट्र उन्नति तो कर रहा है! उस समय अश्वपति महाराज उत्तर देते हैं हां मेरा देश अत्यन्त उन्नत और समृद्ध है क्योंकि:—

न मेस्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निः
नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

हे ऋषे मेरे राष्ट्र में कोई चोर नहीं कोई क्रूर नहीं, ऐसा कोई पुरुष नहीं जो अग्निहोत्र न करता हो, कोई व्यभिचारी नहीं और जब व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्री तो हो ही नहीं सकती है। यह सुनकर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न होते और मनही मन राजा के प्रबन्ध की और प्रशंसा करते हैं। पाठक वर्ग! उस समय रेल तार टेलिफोन और नहरों की उन्नति से ही केवल राष्ट्र की उन्नति का परिमाण नहीं लगाया जाता था। व्यापार, निर्यात पदार्थों के बढ़ जाने और कोश में कुछ चान्दी और सोने के ढेरों के बढ़ जाने मात्र से ही देश को उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ नहीं मान लिया जाता था। परन्तु समाज के व्यक्तिओं की उन्नति से राष्ट्र को उन्नत समझा जाता था। यदि कोई महल ऊपर से अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता था परन्तु उसकी नींव अत्यन्त कच्ची हो रही होती थी तो उसको सुन्दर नहीं समझा जाता था। यदि कोई वृक्ष ऊपर फूल फलों से भरा होता था परन्तु उसकी जड़ें खोखली हो रही होतीं थीं तो उसको प्रशंसा योग्य नहीं समझा जाता था, यदि कोई पुरुष ऊपर वस्त्रों और आभूषणों से

सज्जित होता था परन्तु अन्दर उसकी आत्मा मर चुकी होती थी तो उसको जीवित नहीं समझा जाता था। इसी प्रकार वे इतने मूर्ख नहीं थे कि किसी राष्ट्र के बढ़ते हुए व्यापार और धन धान्य को देखकर मुग्ध हो जाते और एकदम कह उठते कि यह देश बड़ा उत्तम है परन्तु वे इन बाह्य बातों को गौण समझ कर अन्तरीय दृष्टि से यह देखते थे कि क्या राष्ट्र रूपी प्रासाद जो ऊपर से इतना भव्य प्रतीत होता है वास्तव में अन्दर से भी इतना भव्य है कि नहीं। उनकी दृष्टि ऊपर के चोले को पार कर अन्तवर्ति आत्मा तक पहुंचती थी और अन्तरीय उन्नति को वे उन्नति की मुख्य कसौटी समझते थे।

उनका विश्वास था कि राष्ट्र में यदि धर्म की वृद्धि हो रही है तब तो राष्ट्र अवश्य उन्नति कर रहा है यदि धर्म का ह्रास हो रहा है तो राष्ट्र अवश्य नाश को प्राप्त हो रहा है परन्तु प्रश्न हो सकता है कि धर्म की वृद्धि से राजा का क्या सम्बन्ध है इस पर हमारे प्राचीन राजनीतिज्ञों का उत्तर है कि यदि राजा ही चाहे तो वह राष्ट्र को धार्मिक बना सकता है और राजा ही चाहे तो वह सारे राष्ट्र को घोर अधार्मिक भी बना सकता है इस लिये वे कहते थे कि:—

धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति सब भूतमात्र की स्थिति का कारण धर्म है परन्तु उस धर्म की स्थिति का कारण राजा है।

जब राजा धर्म की स्थिति का कारण समझा जाता था तब इसका आवश्यक परिणाम होना था कि राजा केवल देश की आर्थिक और सैनिक उन्नति करने में ही नहीं लगा रहता था परन्तु धार्मिक उन्नति

करने की ओर भी अपना पूर्ण ध्यान देता था। और आज कल के राष्ट्रों के समान वह धार्मिक संशोधन में बिलकुल उदासीन नहीं रहता था इस लिये उन दिनों राजनीतिज्ञ लोग राजा को जोरदार शब्दों में आज्ञा देते हुए कहते थे।

पानागारनिवेशाश्च, वैश्याः प्रापणिका स्तथा।
कुशीलवाः सकितवाः ये चान्ये केचिदीदृशाः॥
नियम्याः सर्व एवैते ये राष्ट्रस्योपघातकाः।
एते राष्ट्रेऽभितिष्ठन्तो बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः
८८। १८। शान्ति०॥

हे राजन्! मद्यशालायें, वैश्यायें, घृणित व्यापार करने वाले, नाचने गाने वाले बदमाश लोग, जुआ खेलने वाले इत्यादि २ दुराचारी राष्ट्र के घातक हैं राजा को उचित है वह इन को राष्ट्र में नहीं होने दे यदि ये राष्ट्र में रहते हैं तो सारी अच्छी प्रजायें इनके कारण दुखित रहती हैं।" पाठकवर्ग! इसी कारण आज के उन्नत राष्ट्रों और उन दिनों के उन्नत राष्ट्रों के वर्णन में इतना भारी भेद है। आज जो राष्ट्र सब से अधिक उन्नत हैं और उन में भी जो नगर सभ्यता के केन्द्र होने का अभिमान रखते हैं यदि देखा जाय तो सब से अधिक मद्यशालायें, सब से अधिक वैश्यायें, सब से अधिक बदमाश लोग और सब से अधिक जुआरी लोग शायद वहीं पर पाये जायंगे। असभ्य और अवनत कहाने वाले राष्ट्रों और नगरों में शायद ही किसी राष्ट्र में इतनी मद्यशालायें और वैश्या शालायें पाई जायंगी जितनी आधुनिक उन्नति को केन्द्र कहाने वाली राजधानियों में पाई जायंगी। बाह्य आर्थिक और राजनैतिक विषयों में आज राष्ट्र मस्त है परन्तु देश

की वास्तविक उन्नति के प्रधान कारण धार्मिक विषयों के लिये वह सर्वथा उदासीन है।

आज कल के राष्ट्रों के शासक विभाग की ओर जब हम दृष्टि-पात करते हैं तो यह पाते हैं कि सभी राष्ट्रों में चाहे वे पूर्ण प्रजासत्ता रखते हों सभी स्थानों पर शासक मण्डल में जो पदाधिकारी नियत किये जाते हैं उनकी नियुक्ति में लौकिक दृष्टि को ही प्रधानता दी जाती है। धनवान् और लौकिक ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुषों के लिये आज ऊंचे से ऊंचा पद खुला है परन्तु जिन्होंने लक्ष्मी को लात मार कर धर्म और विद्वत्ता को विशेष उपार्जन किया है उन के लिये इन राजकीय पदों के सब द्वार बन्द हैं। राजकीय उच्चपदों के प्राप्त करने के लिये धनी और सम्पत्ति शाली होना यही प्रधान शर्तें हैं धार्मिक या विद्वान् होना कोई शर्तें नहीं यदि और स्पष्ट तौर से कहा जाय तो इस में भी कोई अत्युक्ति न होगी कि जो धार्मिक हैं, जो उदार हैं और जो मनुष्य मात्र को प्रेम की दृष्टि से देखने वाले हैं यत्न किया जाता है कि ऐसे पुरुष शासक पदों पर न आसकें। आज कल के अनेक सभ्य राष्ट्र इस प्रकार धार्मिक पुरुषों को अपनी सत्ता के लिये भयानक समझते हैं और यत्न करते हैं कि इन पदों पर वे ही पुरुष रखें जांय जो वञ्चना कुशल हो, स्वार्थ सिद्धि करने के सब मार्ग जानते हों और दूसरे के धनों और अधिकारों को लूट लेने में सिद्ध हस्त हों और एक शब्द में कहा जाय तो जो धूर्तता के पण्डित हों। सच मुच यही वंचक प्रवर और स्वार्थ साधक लोग आज कल युरोप में खून की नदी बहाने, हजारों विधवाओं का आर्तनाद कराने और शान्ति सम्पन्न देशों में भी छीना झपटी कराने के मुख्य कारण हैं।

शायद कहा जाय कि जहां प्रजासत्ता अभी पूरी तौर से नहीं है उन्हीं देशों में इस प्रकार के मनुष्य नियत किये जाते हैं किन्तु जहां पूर्ण प्रजासत्ता है वहां शासक पदों पर धार्मिक, विद्वान् और कुशल तम मनुष्यों को ही नियुक्त किया जाता है। किन्तु हम देख रहे हैं कि जहां पूर्ण प्रजासत्ता है वहां अमरीका जैसे राष्ट्रों में भी यही अवस्था वर्तमान है। चाहे अमरीका की शासन पद्धति युरोप के अन्य राष्ट्रों की शासन पद्धति से उत्तम भी हो परन्तु वहां से भी असन्तोष की जो ध्वनि निकल रही है * उस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहां भी शासक पदों पर नियुक्ति के लिये धर्म सदाचार उदारता और विद्वत्ता की कोई विशेष परवाह नहीं की जाती इस लिए भिन्न २ प्रकार के स्वार्थों से पूर्ण अनेक व्यक्ति शासन पदों पर आजाते हैं। इस से हमारा उस सर्वोत्तम शासन पद्धति पर कोई आक्षेप नहीं है हां उस पद्धति के दुरुपयोग करने पर ही केवल हमारा आक्षेप है। चाहे कुछ भी हो

---

* **अमरीका के गवर्नमेन्ट पदाधीशों, सीनेट के सभ्यों, कांग्रेस के सभ्यों के विषय में एक अमरीकन लेखक लिखता है।**
,,Any one who comes in contact with public men is often destined to a sad disellusionment. Many are poorly educated, often are norrom in their views some are brutally vulger in language and manners, and the proportion of efficient, broodspirited states men among then is much too small **तथा जेम्स ब्राइस जो अब लार्ड ब्राइस है उन्होंने लिखा है कि अमरीका में** "Great men are rare in politics,, **तथा** Mr Leland Howarth **उस का अनुमोदन करते हुवे कहते हैं** " few of the able men, we have, enter politics"

(New India. May 8 1st Page 1618.

परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि आज सभी सभ्य कहाने वाले राष्ट्रों में धर्म, त्याग और विद्वत्ता शासन पदों पर नियुक्त होने वाले के लिये कोई विशेष शर्तें नहीं हैं। परन्तु भारत के प्राचीन राजनीतिज्ञों ने शासन पदों पर नियुक्त होने वालों के लिये यही मुख्य शर्तें रखी थीं। व्यास कहते हैं।

अलुब्धान् शिक्षितान् दान्तान् धर्मेषु परिनिष्ठितान्
स्थापयेत् सर्व कार्येषु राजा धर्मार्थ रक्षिणः॥

१२० । २८ । शान्ति

अर्थात् राज पदों पर वे ही मनुष्य नियत होने चाहियें जो सर्वथा निर्लोभ हों, जो शिक्षित और विद्वान् हों, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में किया हो और जो धर्मशास्त्र ओर राजनियमों के पूर्ण पण्डित हों। पाठक! यदि भारत में राज पदों पर इसी प्रकार के व्यक्ति नियुक्त हों तो हमारा निश्चय है भारत के बहुत से दुखों का नाश सहज में ही हो सकता है।

इसी प्रकार आज कल राजनियमों के बनाने में आर्थिक और राजनैतिक दृष्टियों को जो मुख्यता दी जाती है धार्मिक दृष्टि को उस का सहस्रांश भी नहीं दिया जाता। उसका परिणाम यह हुआ है कि राज शासन या गवर्नमेन्ट प्रजा को अत्यन्त कठोर मालूम होने लगी है आज कल कठोरता और गवर्नमेन्ट इन दोनों को सहचारी शब्द समझा जाता है इस लिये गवर्नमेन्ट का नाम भी लोगों को भयभीत कर देता है।

गवर्नमेन्ट के लिये हमारे दिलों में जो कल्पना है वह ऐसी है मानो एक यम दूत है उसका दिमाग बहुत बड़ा है परन्तु उसके शरीर में दिल या हृदय के लिये कोई स्थान नहीं है वह अपने दिमाग से बड़ा काम

करता है और उन कामों से लोगों को बहुत कुछ लाभ भी होता है परन्तु दिल के न होने से उसका व्यवहार अत्यन्त सूखा है। वह लोगों को अपने कामों से अचम्भा तो करा देता है परन्तु लोगों को अपनी ओर खींच नहीं सकता। लोगों की दृष्टि में वह यमदूत न्याय तो करता है पर उसका न्याय विचित्र ही है। जब वह चलता है और उस के मार्ग में यदि कोई पत्थर आता है तो उस पर भी उसी बल से अपना भारी पांव रखता है और यदि कोमल फूल है उस पर भी उसी वेग से अपना भारी पांव रख देता है। कोमल से कोमल फूल और कठोर से कठोर वज्र दोनों उसकी दृष्टि में समान हैं। निस्सन्देह यह न्याय तो है किन्तु मानुषीय (Human) नहीं है। बस इसी सहृदयता के सर्वथा अभाव हो जाने से शासन मण्डल (गवर्नमेन्ट) आज कल लोगों को प्रिय देवदूत लगने के स्थान पर यमदूत सा प्रतीत होने लगी है। वह गवर्नमेन्ट जो प्रजा सुख, शान्तिप्रबन्ध और उन्नति के लिये बनी हो, अत्यन्त आश्चर्य और विचारणीय बात है कि वे आज क्यों सर्वत्र प्रजा को भयानक यमदूत के समान प्रतीत होने लगी है।

इस का कारण अत्यन्त स्पष्ट है। आज यह सिद्धान्त सर्वत्र माना जाता है कि शासन में धर्म के मुख्य अंगों दया और उदारता का कोई काम नहीं, इस लिये राष्ट्रों को उचित है कि शासन के क्षेत्र में से दया और उदारता का पूर्णतया बहिष्कार न कर दें। मार्ग में जाता हुआ एक पथिक दूसरे किसी व्यक्ति पर जिसको उस ने आज तक कभी देखा भी नहीं है दया कर सकता है, एक परिवार दूसरे परिवार पर जिस से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है दया दिखा सकता है एक मनुष्य समाज अपने से सर्वथा भिन्न दूसरे मनुष्य समाज पर उदारता और दया दिखा सकता है परन्तु आश्चर्य है आज एक गवर्न-

मेन्ट अपने उन राष्ट्र वासियों से लिये कि जिनकी रक्षा के लिये वह नियत हुई है दया दिखाने में हिचकती है। यदि राष्ट्र में किसी स्थान पर वृष्टि न होने से उपज नहीं हो सकी है और अकाल और दुर्भिक्ष तक का भय होने लगता है तो चाहे महाजन लोग कृषकों से ऋण चुकाने में ढील कर दें, चाहे दुकानदार लोग अनाज सस्ता कर दें, परन्तु गवर्नमेन्ट अपने कर में पाई भर भी कमी नहीं दिखायेगी जो कर प्रतिवर्ष लिया जाता है वह उस वर्ष भी लिया ही जायगा चाहे किसान उस भार से दबकर मर क्यों न जांय। गवर्नमेन्ट कानून या राजनियम के अनुसार चलने वाली है और चूंकि कानून इस बात की आज्ञा देता है अतः गवर्नमेन्ट जिस किसी प्रकार उन लोगों से कर उगाह ही लेती है। अतः यह दोष आज कल की गवर्नमेन्टों का नहीं है परन्तु उस सिद्धान्त का है कि जिस के आधार पर आजकल कानून बनाये जाते हैं और वह सिद्धान्त यही है कि शासन में दया धर्म और उदारता का कोई स्थान नहीं है। इसी लिये यह अनर्थ होता है कि जिस कर को गवर्नमेन्ट इस लिये लेती है कि उस से वह प्रजा को लाभ पंहुचाये उसी को कभी २ वह प्रजा के सिर पर पांव रखकर चुकाना चाहती है। परन्तु क्या कभी सम्भव है कि जो कर इस प्रकार चुकाया जावे उस में प्रजा का कोई भी लाभ हो सके।

आक्षेप करने वाले आशंका कर सकते हैं कि वाह आप राज्य को भी घर का मामला बनाना चाहते हैं। घर परिवार और समाज जिस प्रकार धर्म और दया को लक्ष्य में रख कर अपने नियम में कुछ शिथिलता कर देते हैं यदि इस प्रकार राष्ट्र भी अपने नियम में शिथिलता करने लगेगा तो दूसरे ही दिन सारा राष्ट्र अस्त व्यस्त हो जायगा। इस के उत्तर में हमारा निवेदन है कि हां महाशय ! हम

राज्य को भी घर बनाना चाहते हैं हमारे प्राचीन राजनीतिज्ञों का यही सिद्धान्त है कि राज्य भी एक बड़े गृह के तुल्य है जिस में सहस्रों और लक्षों मनुष्य निवास करते हैं इस लिये व्यास कहते हैं ।

पुत्रा इव पितुर्गेहे विषये यस्य मानवाः ।
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः ॥

अर्थात् समस्त राष्ट्र एक घर के समान है जिस प्रकार एक घर में सारे गृह पुत्र स्वतन्त्रता और निर्भयता से घूम सकते हैं उसी प्रकार राज्य रूपी घर में सब प्रजायें निर्भय हो कर विचरें" ।

यदि घर के शासन में जहां एक ओर नियमों द्वारा नियन्त्रण और प्रबन्ध रखा जाता है और साथ ही दया को भी नहीं भुलाया जाता उसी प्रकार सारे राष्ट्र के शासन में भी जहां एक ओर नियमों द्वारा प्रजाओं का नियन्त्रण रखना चाहिये वहां दया को भी सर्वथा तिलाञ्जलि नहीं दे देनी चाहिये । इस सिद्धान्त के स्वीकार करने से राष्ट्र के अस्तव्यस्त होने का भय सर्वथा निर्मूल है । जब हम यह कहते हैं कि शासन में दया का प्रवेश होना चाहिये तो उस का यह अभिप्राय नहीं है कि राज नियमों को अत्यन्त शिथिल कर देना चाहिये किन्तु उस का अभिप्राय यही होता है कि शासन का आधार जो कानून या राज नियम हैं उस को बनाते समय धर्म और दया को पूर्ण तौर से ध्यान में रखना चाहिये । जब राज नियमों को बनाते समय प्रजा के नियन्त्रण के भाव के साथ २ धर्म और दया का भाव भी मन में रखा जायगा तब उन राजनियमों के आधार पर जो शासन किया जायगा वह प्रजा को भयानक नहीं लगेगा परन्तु हृदयाकर्षक और प्रिय मालूम होने लगगा ।

यही प्रचीन भारतीय और आधुनिक राष्ट्रों में भेद है कि उस समय जहां राज नियम बनाते समय तीन बातों पर ध्यान रखा जाता था प्रथम नियन्त्रण, द्वितीय धर्म और तृतीय दया, वहां आज कल केवल नियन्त्रण पर ही ध्यान रखा जाता है। जो शासक मण्डल एकमात्र नियन्त्रण पर ही ध्यान रखता है वह चाहे देश के प्रबन्ध में कोई गड़बड़ नहीं भी होने दे परन्तु प्रजाओं के हृदयों को वह अपनी ओर नहीं खींच सकता। इस लिये शासक मण्डल (गवर्नमेन्ट) को सर्वप्रिय बनाने के लिये प्राचीन राजनीतिज्ञों ने राज नियमों के बनाने में धर्म का भी बड़ा विचार रखा था।

जहां वे कर के विषय में नियम बनाते हैं वहां साथ ही कहते हैं कि ब्राह्मण और श्रोत्रिय से कर नहीं लेना चाहिये क्योंकि ब्राह्मण लोग विद्याध्ययन में ही लगे रहते थे और अर्थोपार्जन के लिये यत्न नहीं करते थे इस लिये राज की ओर से उन पर कर लगाना एक अत्याचार था और विद्याभ्यास को नष्ट करना था इस लिये विद्याभ्यास करने वालों पर जब कर नहीं लगता होगा तब विद्याभ्यास करने वालों की संख्या भी बहुत बड़ी होती होगी। इसी प्रकार श्रोत्रिय लोग जो वेदाभ्यास में सारा समय व्यतीत करते थे उनके लिये भी कर माफ था। इससे वेदाभ्यास के लिये प्रजा को उत्साह दिया जाता था। इससे मालूम होता है कि राज नियम में धर्म का हस्तक्षेप था।

दया का भी राज नियमों में बहुत विचार था इस लिये कर के नियमों के साथ ही प्राचीन समय में नियम था कि जिन से कर लिया जाता है जब वे कर देने के लिये अयोग्य हों तब उन से कर लेना अत्याचार है और इस लिये नहीं लेना चाहिये। साथ ही

यह दया ही थी जिसने उन से लिखा लिया था कि वृद्धों और रोगियों से कर लेना अनुचित है। वृद्ध लोग जो धन कमाते ही नहीं तथा जो रोगी और दुखित हैं वे धनोपार्जन नहीं कर सकते अतः उन से कर लेना क्रूरता है।

इसी प्रकार चाणक्य अपने अर्थशास्त्र में राष्ट्र के नौकाध्यक्ष के लिये नियम बनाते हुए लिखते हैं कि सरकारी नौकाओं से पार होने के लिये यदि कोई ब्राह्मण सन्यासी, छोटा बालक, अति वृद्ध, रोगी, सन्देश हर और कोई गर्भिणी स्त्री आवे तो उसे सरकारी पास मिलना चाहिये और उससे किराया नहीं लेना चाहिये *। यह नियम स्पष्ट ही धर्म और दया के गूढ़ भावों से प्रेरित होकर बनाया गया था।

उन दिनों में नियम था कि जो राष्ट्र में बालक, वृद्ध, रोगी, व्यसनी, और अनाथ हों उन को राष्ट्र की ओर से कुछ काम देना चाहिये ताकि वे अपने अनुकूल कार्य कर सकें और भूखे नहीं मरें। चाणक्य कहते हैं कि राजा का काम है कि वह राष्ट्र में रहने वाले इस प्रकार के पुरुषों का भरण पोषण करे +। दया से प्रेरित

---

* ब्राह्मण प्रव्रजित बाल वृद्ध व्याधित शासनहर गर्भिणो नाव-ध्यक्ष मुद्राभिस्तरेयुः ॥

\+ बाल वृद्ध व्याधित व्यसन्यनाथां च राजा बिभृयात् स्त्रिय मप्रजाता मप्रजातायाश्च पुत्रान् ॥ १६ अ० ।

बाल वृद्ध व्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् ॥ १६ ॥ अ० ॥

व्यास भी कहते हैः—

कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च योषिताम् ।
योग क्षेमं च वृत्तिं च नित्यमेव प्रकल्पयेत् ॥
८६ । २५ ॥ शांति० ॥

हो कर राष्ट्र ने यह नियम बनाया था अन्यथा आज कल के समान वे इन लोगों को अपने भाग्य पर छोड़ सकते थे।

चन्द्रगुप्त के शासन काल के इतिहास को जानने वाले जानते हैं कि उस समय गवर्नमेन्ट की ओर से जहां और अनेक राजकीय विभाग (Departments) थे वहां एक आतिथ्य विभाग भी था जिस का काम था कि वह नगर में बाहर से आने वाले यात्रियों के आराम के लिये और अतिथ्य के लिये पूर्ण प्रबन्ध करे। इस प्रकार गवर्नमेन्ट की ओर से बाहर से आने वाले यात्रियों का प्रेम पूर्वक आतिथ्य हो, यह दृश्य भारत की पवित्र और धार्मिक पृथ्वी पर ही पाया जा सकता है अन्यत्र इसका पाना अत्यन्त दुर्लभ है।

अशोक महाराज की गवर्नमेन्ट ने देश भर में स्थान २ पर धर्मशालायें और कुएं आदि बनवाये थे। आजकल के डाक बंगलों की तरह वे राष्ट्र की आय के साधन समझ कर नहीं बनाये गये थे। वे धर्मशालायें सर्वथा धर्मार्थ थीं। कई ऐतिहासिक बताते हैं कि उन धर्मशालाओं में यात्रियों के लिये भोजन, पान और शयन आदि का सारा प्रबन्ध राज्य की ओर से होता था यात्रियों से एक पैसा भी नहीं लिया जाता था। इसी प्रकार राज्य की ओर से चिकित्सालय और पशु चिकित्सालय खुले हुए थे जो सर्वथा धर्मार्थ थे। आजकल राज्य शासन करने वालों ने क्या किसी देश में इस प्रकार धर्मार्थ कार्य करने का उदाहरण प्रस्तुत किया है?

इतना ही नहीं महाराज अशोक ने तो धर्म प्रचार का काम राज्य की ओर से ही कराना आरम्भ किया था क्योंकि उस समय यह सिद्धान्त माना जाता था कि धार्मिक उन्नति सब से बड़ी उन्नति

है और यदि गवर्नमेन्ट देश की उन्नति के लिये है तो उस का काम है कि वह देश की धार्मिक उन्नति की ओर प्रधान तौर से ध्यान दे। उस समय देश के प्रत्येक कोने में धर्म का पवित्र सन्देश सुनाने के लिये और लोगों को धार्मिक बनाने के लिये गवर्नमेन्ट की ओर से एक बड़ा भारी नियमित प्रबन्ध हुआ था और इसका परिणाम यह हुआ था कि देश की धार्मिक अवस्था बहुत उन्नत होगई थी। पशुओं की हिंसा सर्वथा बन्द सी होगई थी, मांस का खाना बहुत कम होगया था और मादक पदार्थों का सेवन भी अवश्य कम हो गया होगा। उस समय की धार्मिक अवस्था के लिये कोई प्रमाण चाहे नहीं मिलता परन्तु निश्चय होता है कि राजनैतिक उन्नति के साथ २ देश की धार्मिक उन्नति भी बहुत होगई होगी।

आज भारत युरोप को इस विषय में एक पाठ सिखा सकता है कि धारायें (Acts) बनाकर बाधित तौर से देश में धर्म नहीं फैलाया जा सकता। जो राष्ट्र नियम बनाकर राज भय से धर्म फैलाना चाहेगा वह सर्वथा असफल होगा क्योंकि धर्म बाहर से नहीं डाला जासकता। धर्म का विकास हृदय से होता है इस लिये गवर्नमन्ट को धर्म फैलाने के लिये उचित है कि वह लोगों के दिलों को और उन के अन्तरीय विचारों को बदलने का यत्न करे। इसी लिये अशोक ने नियम धारायें बनाकर बलात्कार धर्म का प्रचार नहीं किया प्रत्युत राज्य की ओर से सच्चे त्यागी धर्म प्रचारकों को नियत किया और उनकी पूर्ण सहायता की ताकि वे लोगों के हृदयों को ऐसा बदल दें कि उनमें धर्म का अमृत-मय बीज बोया जा सके। इस प्रकार राज्य की ओर से धर्म प्रचार कराने का उदाहरण केवल भारत की धार्मिक वसुन्धरा में ही हमें देखने को मिल सकता है।

परन्तु भारत का महत्त्व इतना ही नहीं है। यदि धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो भारत का बड़ा ही महत्व है। जिस प्रकार महापुरुष वही होता है जो न केवल साधारण अवस्था में ही धर्म की रक्षा करता है किन्तु आपत्ति में भी धर्म पथ पर दृढ़ रहता है उसी प्रकार बड़ा राष्ट्र वही है जो न केवल साधारण अवस्था में ही धर्मराज के शासन का मान करता है किन्तु आपत्ति आने पर भी धर्ममार्ग से च्युत नहीं होता।

आज कल के सभ्य कहाने वाले राष्ट्रों में जब परस्पर युद्ध छिड़ता है तो सब से पहिले धर्मराज का मुंह काला किया जाता है। सत्य, न्याय, दया, कृतज्ञता और उदारता इन सब का एक एक करके खुले बाजार अपमान किया जाता है। धर्मराज को कहीं छिपकर बैठने को भी स्थान नहीं दिया जाता।

वर्तमान युद्ध के समाचारों को कभी २ सुनने वाले भी जानते हैं कि किस प्रकार आजकल के राष्ट्र अपने पुराने प्रतिज्ञा पत्रों को कि जिन को धर्म के नाम पर शपथ खाकर लिखा जाता है, एक क्षण में रद्दी के कागज की तरह फाड़ कर फैंक देते हैं। उन अन्तर्जातीय नियमों का कि जिन को धर्म और न्याय के नाम पर बनाया जाता है एक ही क्षण में तिरस्कार किया जाता है।

शत्रुदेश में स्थित प्यारे धर्म मन्दिरों को तोप के गोलों से उड़ा दिया जाता है, नगरों में रहने वाले निरपराध मनुष्यों का खून किया

जाता है और स्त्रियों का सतीत्व ध्वंस किया जाता है। यह हाल है इन देशों का जो अपने को सभ्य कहने का अभिमान रखते हैं। उनका यह माना हुआ सिद्धान्त है कि चाहे अधर्म हो और चाहे धर्म हो विजय होना चाहिये। परन्तु दूसरी ओर प्राचीन भारत है जिस को असभ्य और जंगली कहकर पुकारा जाता है वहां यह सिद्धान्त गूंज रहा था कि—

धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा। ७२ अ० शान्ति०

व्यास ऋषि राजा को सम्बोधन करके कहते हैं कि धर्म पूर्वक युद्ध करते हुए मर जाना ठीक है पर पाप कर्म करते हुए विजय प्राप्त करना अत्यन्त अमंगल का हेतु है।

इस लिये उस समय युद्ध करते हुए भी धर्म का तिरस्कार नहीं किया जाता था। युद्ध के समय पर राष्ट्र में जाकर स्त्रियों का सतीत्व ध्वंस नहीं किया जाता था। निरपराध पुरुषों का गला नहीं घोंटा जाता था। इसी लिये मेगस्थनीज़ ने लिखा था कि भारत वासी लोग अपने शत्रु के देश में जाकर युद्ध करते समय भी कहीं आग नहीं लगाते वहां की भूमि और नगरों को उजाड़ नहीं करते और वहां के कृषकों तक को नहीं सताते।

अहा! पाठक वर्ग! धार्मिक दृष्टि से वह समय कैसा स्वर्गीय होगा जब एक ओर भयानक युद्ध हो रहा होता था और दूसरी ओर कृषक लोग शान्ति से अपनी कृषि कर रहे होते थे। कृषक लोग योद्धाओं को देख कर आज कल के समान डर कर भागते नहीं थे क्योंकि

वे जानते थे कि उनके शत्रु लोग उनको निरपराध समझ कर कोई हानि नहीं पहुंचायंगे । परन्तु आज भी एक समय है जब ग्राम वाले अपने ही देश की सेना को कहीं आते हुए देखते हैं तो अपना जान माल सम्भाल कर पहले ही भाग जाते हैं ताकि वे बेगार में न पकड़े जासकें । जहां पहले पराये राज्य की सेना भी ग्राम वालों को कोई दुःख नहीं देती थी वहां आज अपनी सेना ही उनको लूटने में कोई कसर नहीं रखती ।

चाहे अन्तर्जातीय नियम कुछ भी हों परन्तु आज कल युद्ध के समय जिस किसी प्रकार से शत्रु हराया जासके उसी तरह यत्न किया जाता है । पानी में बिष मिला कर हजारों को मारा जा चुका है विषैली गैसों से सहस्रों ही मर चुके हैं और सैंकड़ों जन्म भर के लिये अधमरे हो चुके हैं । भयानक शस्त्रों से एक साथ अनेक सेनाओं को मूर्छित और स्तम्भित कर के मारा जाचुका है । नानारूप धरी वञ्चना पूर्ण शस्त्रों से सैंकड़ों आराम से बैठे २ ही उड़ाये जा चुके हैं । ऐसे क्रूर शस्त्रों का प्रयोग भी हुआ है जिन से शत्रु सेना के लोग अत्यन्त कष्ट को झेलते हुये मृत्यु की शरण लेते हैं किन्तु शोक इस बात का है कि इन शस्त्रों का प्रयोग सभ्यता की आड़ में किया जाता है ।

जिस राष्ट्र ने ऐसे क्रूर शस्त्रों का अधिक प्रयोग किया है लोगों ने उसे ही सब से अधिक सभ्य समझा है । परन्तु जंगली कहाने वाले प्राचीन भारत के राजनैतिक उस समय पुकार के कहा करते थे कि:—

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्
कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्नि ज्वलिततेजनैः॥७।९० मनु० ॥

ऐसे शस्त्रों को युद्ध में कभी नहीं चलाना चाहिये जिन का प्रभाव शरीर पर बहुत भयानक हो, जिनका शरीर से निकलना कठिन हो, जो विषैले हों और जो अग्नि से जला देने वाले हों। अहा! पाठक वर्ग! उन प्राचीन राजनीतिज्ञों के दिल में युद्ध के समय भी धर्म निवास करता था, क्रोध के समय भी दया रहती थी और संकट के समय भी मनुष्यता को नहीं भुलाया जाता था। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे भयानक शस्त्रों को बनाना जानते ही नहीं थे। रामायण और महाभारत के पढ़ने वाले जानते हैं कि उन दिनों पाशुपतास्त्र और मोहनास्त्र जैसे शतशः अस्त्र विद्यमान थे परन्तु उन शस्त्रों को कभी अत्यन्त संकट के समय पर ही चलाने की आज्ञा थी।

युद्ध के संकटमय समय में भी भारतवर्ष धर्म को नहीं भुलाता था। इसी लिये आपस्तम्ब में लिखा है कि युद्ध में भी शत्रुओं पर क्रूरता और निर्दयता न होनी चाहिये। जो निश्शस्त्र हो जो बाल खोल कर दया की प्रार्थना करता हो और जो भाग रहा हो उसको मारना सर्वथा अनुचित और नियम विरुद्ध है +।

बौधायन लिखते हैं कि जो शत्रु भयभीत हो और पागल होगया हो उस को मारना अत्याचार और जुल्म होने से सर्वथा पाप है। आगे

+ २।५।१०।११॥

वे कहते हैं कि स्त्री, बालक, वृद्ध और ब्राह्मण इन को मारना सर्वथा ही वर्जित है * ।

मनु आज्ञा देते हैं कि जो भयभीत हो, जो हाथ जोड़ कर दया की याचना करता हो, जो सोया हुआ हो, जो बैठा हो और जो शस्त्रहीन हो गया हो इन से लड़ना नहीं चाहिये तथा इन को मारने वाले को भारी पाप लगता है इत्यादि । ये हैं आज्ञायें अर्ध सभ्य कहाने वालों की; परन्तु आज सभ्य कहाने वालों की लीला ही विचित्र है ।

रात को छिप कर अपने शत्रुदेश के नगरों पर बम्ब के गोले फेंके जाते हैं और सोती हुई निरपराध ललनाओं, बच्चों और वृद्धों की जानें मारी जाती हैं ।

अहो ! आज विपरीत ही दृश्य है । यह यत्न किया जाता है कि जो सेनायें या निरपराध नागरिक लोग सोये हुए हों, बैठे हुए हों, या शस्त्र हीन हों उन्हीं को मारा जाय और जो सन्नद्ध होकर खड़े हों या जो शस्त्रयुक्त हों उनके सामने से भागा जाय ।

यदि उपर्युक्त भारतीय राजनैतिकों के कहे हुए नियमों को आज भी माना जाता तो आज बिना शस्त्र नागरिक लोगों से भरे हुए जहाजों को समुद्र के गर्भ में डुबाया नहीं जाता हजारों स्त्रियों और बच्चों का घात न होता और वस्तुतः वर्तमान युद्ध की हृदय विदारणी नृशंसता का आधा हिस्सा कम हो जाता ।

---

* १ । १० । १८ ॥ तथा वेद व्यास ऋषि कहते हैं
निष्प्राणो नाभिहन्तव्यः नानपत्यः कथंचन ।
भग्नशस्त्रो विपन्नश्च कृतश्चो हतवाहनः ॥
९५ । ११ ।

आज सभ्यता के शिखर पर चढ़े हुए देश शत्रु देश के घायलों से पशु सदृश व्यवहार करते हुए नहीं चूकते । उन को भूखा तक रखा जाता तथा पशुओं के समान उन से काम लिया जाता है । उन को कष्ट पहुंचाने में कोई कसर नहीं रखी जाती । परन्तु दूसरी ओर असभ्य कहाने वाले भारत के राजनैतिकों की ओर देखिये, वे कहते हैं—

चिकित्स्यः स्यात्स्वविषये प्राप्यो वा स्वगृहे भवेत् ।

शान्ति ९५ । १२

अर्थात् घायलों को या तो अपने देश में ही रखकर भली प्रकार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये या उन को सुरक्षित तौर से अपने २ घर पर पहुंचा देना चाहिये ।

जो हमारा खून बहाकर फिर घायल हुए हैं उन पर भी दया दिखाना भारतवर्ष का ही काम है ।

इसी प्रकार आज कल बड़ा भारी प्रश्न है कि जो पुरुष युद्ध में घायल हुए हैं उन के घर में रहने वाली स्त्रियों का भरण पोषण कैसे होगा ।

प्राचीन भारत में जब राष्ट्र को धर्म का अनुचर समझा जाता था उस समय नियम था कि युद्ध में मरे हुए पुरुषों की स्त्रियों का पालन राज की ओर से हो + । जिस राज्य की सेवा में उन के पतियों का घात हुआ है उसी राज्य का कर्तव्य है कि वह उन स्त्रियों का पालन करे ।

\+ वसिष्ठ सूत्र १९ । २० ।

युद्ध के संकटमय समय में भी धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये यह भारत का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के कारण भारतवर्ष ने उन विदेशियों से कि जिनका यह सिद्धान्त नहीं है लड़ते हुए बहुत बार धोखा खाया है। उदाहरणार्थ राजा पोरस (पौरुष) ने सिकन्दर से धोखा खाया, पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन पर विश्वास कर उस से धोखा खाया और क्षत्रिय प्रचण्ड चूण्डावत् ने रणभूमि के बीच में असत्य-वादी औरंगज़ेब पर विश्वास कर उसे जीता छोड़ धोखा खाया।

इसी प्रकार अनेक बार भारत ने विदेशियों से धोखा तो खाया परंतु यतो धर्मस्ततो जयः के सिद्धान्त के अनुसार जहां धर्म होता है अन्त में विजय वहीं होती है।

आज वे युनानी, तातारी और मुग़ल बादशाही नष्ट होगई परन्तु वह भारत जिसको उन्होंने कुचल देना चाहा था उसी तरह सुरक्षित विद्यमान है।

पाठक वर्ग! यही धार्मिक प्रधानता जो भारत के जीवन के प्रत्येक अंग में विद्यमान थी वह भारत में राजा और विशेषत: एकाधिकारी राजा को स्वभावत: ऐसा बांध कर रखती थी कि वह प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता था। यही कारण है कि युरोप में एकाधिकारी राजाओं ने जो अत्याचार किये हैं भारत के एकाधिकारी राजाओं ने उन का सहस्रांश भी नहीं किया।

—:०:—

वेद विषयक, वैदिक एवं प्राचीन साहित्य सम्बन्धी

हिन्दी और संस्कृत में उत्तमोत्तम निबन्ध

"मन्त्री साहित्य परिषद् गुरुकुल कांगड़ी"

से प्राप्त हो सकते हैं—